# लेखक परिचय

## डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान-गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

# विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान

**(मानसिक, धार्मिक व सामाजिक विषयों पर आध्यात्मिक चिंतन)**

**राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)**

# विश्व की समस्याएं
# और
# आध्यात्मिक समाधान

सर्वाधिकार सुरक्षित
जून 2007

**डा० हरिओम**
वरिष्ठ वैज्ञानिक

**राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र**
**(हरियाणा)**

# विषय - वस्तु


| क्रम सं. | विषय | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|
| 1. | आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य | 1 |
| 2. | चेतना की अधिकता - समस्याओं की न्यूनता | 5 |
| 3. | प्राकृतिक आपदाएं और धार्मिक कर्त्तव्य | 9 |
| 4. | धार्मिक कट्टरपनः कारण और उपाय | 13 |
| 5. | धर्म व धर्म के नाम पर गुरूओं की विलासिता | 17 |
| 6. | मनुष्य का अहंकार और उससे मुक्ति | 20 |
| 7. | मनुष्य का बढ़ता भय और धर्म का महत्त्व | 23 |
| 8. | आपसी मतभेदः एक आध्यात्मिक आवश्यकता | 27 |
| 9. | सकारात्मक दृष्टि से हर समस्या का समाधान | 30 |
| 10. | आतंकवाद और विश्व गांव का सपना | 34 |
| 11. | खाड़ी युद्ध : कारण और उपाय | 38 |
| 12. | मानसिक तनाव और जीवन की व्याधियां | 42 |
| 13. | जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न | 51 |
| 14. | पुस्तक सूची | 52 |


**राधास्वामी।**

**राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।**

**राधास्वामी।**

# समर्पित

**राधास्वामी दयाल परम् संत**

**सतगुरू ताराचन्द जी महाराज**

**के चरण कमलों में।**

# आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर



स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

**मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।**
**पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।**

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते



थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।



**राधास्वामी।**

# चेतना की अधिकता-समस्याओं की न्यूनता

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि ब्राह्मण वही होता है जो ब्रह्म में लीन हो जाता है। वह दान देता है लेता नहीं। उसके अंदर शब्द रूपी कामधेनू गाय प्रकट हो जाती है जो उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर देती है। चरणदास जी महाराज कहते हैं-

**ब्राह्मण सोई जो ब्रह्म पिछाणै बाहर जान्दा भीतर आणै,**
**पांचो बस कर झूठ नहीं भाखै दया जनेऊ घट में राखै।**
**काम क्रोध लोभ मोह अहंकार न होई चरणदास ब्राह्मण है सोई।।**

हम अंदर की दौलत से वंचित हैं इसलिए बाहर भी मारे मारे फिर रहे हैं। इसका कारण यह है कि हमारा आज्ञा चक्र सक्रिय नहीं है। वह सुषुप्त है। जन्मों-जन्मों से सुषुप्त है, उसे जगाने का प्रबन्ध नहीं किया गया है। जब यह जाग जाता है तो शरीर की जीवन शक्ति फुफकार कर दोनों आखों के बीच में नृत्य करने लगती है। इसे ही शास्त्रों ने कुण्डलीनी शक्ति का जागरण कहा है। तीसरी आंख का खुलना कहा है। महात्मा बुद्ध ने इसे दिव्य-चक्षु और महावीर स्वामी ने इसे परम् ज्योति कहा है। कपिल मुनी इसे विवेकख्याति प्राप्ति और पतंजली इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहकर पुकारते हैं जहां चित्त की वृति प्रकाशमान हो उठती है। जिसके प्रकाश में पुरूष (आत्मा) प्रकृति के विकारों को स्वयं देख लेता है और प्रकृति या संसार के बंधन से मुक्त हो जाता है। स्वतंत्र हो जाता है।

ओशो कहते हैं कि जब तक आज्ञा चक्र सक्रिय नहीं है तब तक व्यक्ति गुलामी की जंजीरों से नहीं छूट सकता है। वह हमेशा परतंत्र है, गुलाम है। एक गुलामी से छूटता है तो दूसरी गुलामी पकड़ लेती है। वह आज्ञा दे नहीं सकता, केवल ले सकता है क्योंकि उसका आज्ञा पुरूष सुषुप्त है।बेहोश है। तांत्रिक शास्त्र कहते हैं कि तीसरी आंख का भोजन होश है। वह जन्म-जन्मांतरों से भूखी है क्योंकि उसकी बेखरी (बेखबरी)



की समाधि लग गई है। ऊपर ताला लग गया है। चाबी मिल नहीं रही है। होश या जागृति की चाबी लगाने की आवश्यकता है तभी वह ताला खुल सकता है। वह बन्द कली खुल सकती है, फूल बन सकती है। जिसके पास हमारी सभी समस्याओं का इलाज है।

जब होश का यह भोजन उसे मिलने लगता है तो बाहर का होश जाने लगता है। शरीर, मन व इन्द्रियों का होश खोने लगता है। चेतन शक्ति जागने लगती है और सुदर्शन चक्र की भांति चक्र लगाने लगती है। बादलों की घटा में छिपा हुआ सूर्य प्रकाशित हो उठता है।

आदित्यवत प्रकाशयति तत् परम्। आत्मदेव सूर्य की भांति चमकने लगता है। वेद कहता है- तत् सत्यम् सूर्यम् तमसि क्षियन्तम्। जब यह सूर्य दृष्टिगोचर होता है तो अज्ञान और अविद्या रूपी अंधकार छटने लगता है। ऐसा भाव पैदा होते ही दुखों का अभाव होने लगता है क्योंकि अब आज्ञापुरूष स्वयं आज्ञा देने लगा है जो सबसे पहले आत्म-स्वतंत्रता मांगता है क्योंकि परतंत्रता कमजोरी, अज्ञान व अंधकार का गुण है, चांदनी का नहीं। अन्तर में प्रकाश का स्रोत खुल जाता है और दूर-दूर तक अपनी छटा बिखेरने लगता है। आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक गुलामी से निजात मिलती चली जाती है। चेतना बढ़ती चली जाती है तो समस्याएं घटती चली जाती हैं। चेतना की कमी दु:ख, अज्ञान और अधंकार को आमन्त्रित करती है। इसलिए आत्मिक चेतना बढ़ने से व्यक्ति की हर प्रकार की गुलामी की जंजीरें टूटती चली जाती हैं और उसके अन्दर स्वामित्व का भाव बढ़ता चला जाता है। सच्चा अध्यात्म वही है जो हमें खुद का स्वामी बनाए, हर प्रकार के भय और बैर से दूर हटाये और दिव्यता लाए।

**दिव्य देश के सतगुरू वासी,**
**दीपक दीन्हा स्वयं प्रकाशी।**

स्वंय प्रकाशित भक्ति मणि प्राप्त हो जाती है। इस मणि की चमक देखकर कबीर साहब कहते हैं-

**लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।**
**लाली देखण मैं गई मैं भी हो गई लाल।।**

इस लाल की लाली इतनी आकर्षक है कि भक्त शरीर का होश खो बैठता है और उसी का रूप हो जाता है। फिर कहते हैं–

**कोटिक चंदा उगमियां कोटिक सूरज भान।**
**कोटिक दमकै दामिनी पारब्रह्म दरम्यान।।**

अंतर में इतना आलोक हो जाता है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। नानक साहब कहते हैं–

**सौ चन्दा उगमियां सूरज कई हजार।**
**इता चांदण होन्दियां गुरू बिन घोर अंधियार।**

इस नूर का वर्णन करते हुए नित्यानंद महाराज कहते हैं–

**साहिब नूर नूर के सेवक नूर की ही नगरी है।**
**सूक्ष्म सेज पर नूर चमकै सो घर परा परी है।।**

इस नूर के साथ अनहद की घनघोर भी उठती है।

**चमकै पदम दामनी दमकै निकसै भान करोड़।**
**कहै कबीर सुनो चित्त देकर अनहद की घनघोर।।**

पल्टू साहब और भी जीवन्त वर्णन करते हुए कहते हैं–

**लगगी आग सुरत की चमक में,**
**फूट गया आसमान शब्द की गमक में,**
**शेषनाग सब लगे कांपने,**
**अरे हारे पल्टू सुन्न समाध की खबर नहीं आपनै।**

ऐसी अवस्था आने पर भक्त को स्वयं की कोई खबर नहीं रहती है, वह कहता है–

**पलक झपकने की देरी है, सुभान कुदरत तेरी है।**

यह अवस्था प्राप्त होने पर साधक हर समय प्रकाश में खेलता है। उठता–बैठता, खाता–पीता, चलता–फिरता उसी का रूप बन जाता है। वह कहीं



भी रहे उसी के साथ जुड़ा रहता है। कबीर साहब कहते हैं–

**सत्यवंती पीहर बसै रहै पीव का ध्यान।**
**कहती तो लज्जा करै ऐसा आत्म ज्ञान।।**

उसकी सैन–बैन को सांसारिक लोग नहीं समझ पाते हैं। केवल गुरूमुख ही उसकी हालत को समझ सकता है। संसार में रहते हुए भी उसकी दृष्टि गुरू पर टिकी रहती है। वह कहता है–

**ब्याही से कंवारी मिली फीके लागे बैन।**
**ब्याही से ब्याही मिली मिले सैन में सैन।।**

जब व्यक्ति की ऐसी हालत हो जाती है तो उसे स्थितप्राज्ञ कहा जाता है। वह ब्रह्मलीन हो जाता है। मेरे सतगुरू कहते थे कि ऐसा व्यक्ति सतगुरू को बिक जाता है, वह आपे में नहीं रहता है। उसकी वाणी में सतपुरूष बोलता है इसलिए ऐसे व्यक्ति से समझकर व्यवहार करना चाहिए।

# प्राकृतिक आपदाएं और धार्मिक कर्त्तव्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि अपनी कमाई का दसवां हिस्सा सतगुरू को भेंट करना चाहिए। लेकिन कौन सा दसवां हिस्सा? क्या धन का दसवां हिस्सा या जमीन-जायदाद, फसल और व्यापार का दसवां हिस्सा गुरू को भेंट करना चाहिए? सभी धर्म कहते हैं कि परमात्मा को अपनी कमाई का दसवां हिस्सा अवश्य ही समर्पित करना चाहिए। मेरे सतगुरू ने समय की नजाकत को देखते हुए राधास्वामी पंथ की कुछ शिक्षाओं में परिवर्तन किया यह भी उनमें से एक है क्योंकि धर्म भी अब धन-दौलत के पहिए पर चलने का प्रयास कर रहा है। जहां शान्ति मिलती थी वहां भी अब तनाव की स्थिति पैदा हो गई है। जो जितनी अधिक धन की भेंट चढ़ा रहा है उसे उतना ही अधिक सम्मान प्राप्त हो रहा है।

इस समय धर्म विकृति की अवस्था से गुजर रहा है, इसमें विकार पैदा हो गए हैं। हमने तन, मन और धन हर प्रकार से सतगुरू की सेवा करने का प्रयास किया। जब सतगुरू के पास जाते थे तो सेवा अर्पण करते समय मन में यह ख्याल नहीं रहता था कि जेब में कितने पैसे हैं, अधिक से अधिक उनके चरणों में समर्पित करने के लिए आतुर रहते थे। स्वयं को लुटाने के लिए निकल पड़े थे। सतगुरू के आशीर्वाद और उनकी दया मेहर ने हमेशा हमारी सहायता की और किसी भी वस्तु की कमी महसूस नहीं होने दी लेकिन क्या कारण है कि आज हम संगत से सेवा (धन) नहीं लेने के संकल्प का आह्वान कर रहे हैं?

इसका एक कारण है। उन्नीसवीं शताब्दी में ईसाई धर्म ऐसी ही परिस्थितियों से गुजरा था बल्कि आज भी चर्च एक विशाल संस्था बन चुका है जो धनबल के आधार पर अपना विस्तार करना चाहता है। दूसरे धर्मों में यहां तक कि हिन्दू धर्म भी कट्टरपंथ, धनबल और बाहुबल का अखाड़ा बनता जा रहा है। सभी धर्मों के कट्टरपंथी आधुनिकता और



आधुनिक ज्ञान व विज्ञान को कोस रहे हैं, धर्म का दुश्मन बता रहे हैं, इसे परमात्मा के मार्ग में रूकावट बता रहे हैं। पंडित, पादरी, मौलवी सभी धर्मशास्त्री इकट्ठे हो गए हैं, आधुनिकता के खिलाफ एकजुट हो गए हैं। इसका अर्थ है कि अध्यात्मवादियों में ज्ञान की कमी हो गई है जिसके कारण धर्म के प्रचार के लिए अवांछित साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। वे अपनी बात कहने और मनवाने के लिए स्वयं को अयोग्य पा रहे हैं। कुछ दिन पहले की बात है कि एक देश की गलियों में टेलिवीजन और रेडियो सैटों को इकट्ठा करके जलाया गया। इन्हें धर्म का दुश्मन करार दिया गया। कुछ महीने पहले एक धार्मिक पत्रिका में हमने पढ़ा कि सत्संगी को टेलिविजन नहीं देखना चाहिए। क्या धर्म इतना पंगू हो गया है, इतना बेजान हो गया है कि समय की धारा के प्रबल प्रवाह से बचने के लिए उसे आत्मरक्षा में अपना मुहँ छिपाना पड़े और विज्ञान की उपलब्धियों से वंचित रहना पड़े। उसकी खूबियों को नजरअंदाज करना पड़े? क्या टी.वी. और रेडियो सैटों को जलाने से या पाश्चात्य क्लबों का बहिष्कार करने से हम धर्म की रक्षा कर पाएंगे?

यह सत्य है कि वातावरण का अपना प्रभाव होता है लेकिन वातावरण, राजनीति, अर्थनीति, सामाजिक व्यवस्था आदि धर्म के बाहरी खौल ही तो हैं। हमें इनकी नियति को समझना होगा। इनकी आंखों में आंखे डालकर इनके मायावी प्रभाव से सावधान व रूबरू होना होगा और इनकी अच्छाइयों को अपनाना होगा। यदि हम वास्तव में धर्म की परिभाषा को समझना चाहते हैं तो हमें काल के कपाल पर लिखी हुई लिपी के अन्दर छिपे हुए धार्मिक संदेश को पढ़ना होगा। यदि ऐसा हुआ तो फिर ये बाहरी मायावी खौल धर्म के किले की दिवारें बन जाएगें। इनमें रहते हुए भी मनुष्य धर्म की अन्तरतम आत्मा के आनन्द से वंचित नहीं रहेगा। बिल्ली को देखकर कबूतर की तरह आंख बंद करने की आवश्यकता नहीं रहेगी बल्कि उसके साथ मित्रता और निडरता का माहौल पैदा हो सकेगा। मानव की मानवता अपने चरमोत्कर्ष को

छू सकेगी। आपसी प्रेम और भाईचारे को आत्मसात कर सकेगी।

अब सतगुरू को एक शरीर में नहीं बल्कि हर मनुष्य के अंदर देखने की आवश्यकता है। यही आध्यात्मिक साम्यवाद की मांग है। हमारे पड़ौस या आसपास में कोई दुखिया व्यक्ति कराह रहा है तो वह सतगुरू की आवाज है। गुजरात के भुकम्प की त्रासदी से कोई मां या पत्नी अपने बेटे या पति के वियोग में चिल्ला रही है तो वह सतगुरू की चित्कार है। कोई बच्चा अपने परिजनों से बिछुड़ गया है तो यह सतगुरू का स्वयं से वियोग है। यदि धन का ही दसवां हिस्सा अर्पित करना है तो उस सतगुरू के चरणों में अर्पित करो जिसे इसकी वास्तविक आवश्यकता है, जहां यह धन जीवन दायनी संजीवनी बन सके, प्राणरक्षक बन सके। जीवित सतगुरू की रक्षा कर सके। मुर्दा सतगुरू का रूप न ले सके जहां इसका प्रयोग आश्रम, मंदिर या मस्जिद की निर्जीव दिवारों को बनाने व सजाने में किया जाए और सतगुरू या ईश्वर का फोटो रखकर उसकी आरती उतारी जाए।

जब कुदरत की मार पड़ती है तो उसके लिए सभी भवन एक जैसे हैं चाहे आलीशान मकान है, महल है, मंदिर है, मस्जिद या गुरूद्वारा है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इस मार के सामने वही भवन टिक सकता है जिसकी नींव मजबूत है। इसलिए कुदरत के खाते में इन बातों की कोई अहमियत नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण गुजरात में अभी आए भीषण भुकम्प ने मनुष्य को दे दिया है लेकिन फिर भी मनुष्य यदि धर्म के ठेकेदारों और स्वार्थी तत्वों की राजनीति के हाथों का खिलौना बनकर स्वयं को लुटाना चाहता है तो इसे उसकी नियति ही कहा जाएगा।

मनुष्य सो रहा है, आवश्यकता है जागने की। नींद गहरी है इसलिए उसकी तन्द्रा को तोड़ने के लिए गहरे उतरना पड़ेगा। जड़ के स्तर पर जाकर जागना होगा वरना फिर वही झपकी, स्वप्न और गहरी निद्रा। चाहते हुए भी उसे काल के निर्दयी हाथों से बचाया न जा सकेगा। उसका मस्तिष्क प्रदुषित होता चला जाएगा। संस्कार विषैले होते चले जाएंगे और वह स्वयं



के साथ हिंसक खेल खेलने पर उतारू हो जाएगा। इसलिए संस्कारों की गहरी निद्रा को जगाना होगा। इसके लिए आवश्यक है स्वयं की अन्तरतम तहों में उतरना जहां स्थूल और सूक्ष्म दिवारों के परे आत्मा का कारण शरीर है जो सारे कर्म, ज्ञान और संस्कारों का स्रोत है। उसी ऊर्जा को कार्यान्वित करना होगा, उपयोग में लाना होगा। वरना प्रदूषित विचार प्रदूषित वातावरण पैदा करेंगे। प्रदूषित वातावरण से प्रकृति का संतुलन बिगड़ेगा और हमें बार-बार भूकम्प, तुफान और प्रलय जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इसका प्रमाण यह है कि पिछले बारह साल के अंतराल में छः भुकम्प आ चुके हैं जो आज तक के इतिहास में एक रिकार्ड है।

आत्मा के कारण-शरीर का मर्म पाने के लिए मानव को अपने अंदर उतरना होगा ताकि उसे एक अखण्ड, अपरिमापी और अनामी शक्ति का साक्षात्कार हो सके। सबके अन्दर उसी रूप के दर्शन हो सकें। सबके अंदर एक ही सतगुरू का रूप दिखाई दे सके। इसलिए मेरे सतगुरू कहते थे कि मुझे धन या तुम्हारी दौलत का दसवां हिस्सा नहीं चाहिए बल्कि अढ़ाई घंटे ध्यान और आत्म मंथन के लिए चाहिएं जो दिन और रात के कुल समय का दसवां हिस्सा बनते हैं। इस दान से तुम अपनी असलीयत से वाकिफ हो सकोगे, हकीकत को समझ सकोगे। समाज में आई किसी भी कुरीती या प्राकृतिक आपदा का कारण समझ में आ सकेगा और अपनी योग्यता व ज्ञान के अनुसार मनुष्य के द्वारा तन, मन व धन से मानवता की सहायता की जा सकेगी तथा मनुष्य अपने और अपने वातावरण के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने में सक्षम हो सकेगा। यही सार्वभौमिक धर्म है। आत्मिक स्वरूप को जानना शावश्त धर्म है तथा संसार के सभी रूपों, सभी जीवों और सम्पूर्ण वातावरण के अन्दर उसी आत्मा का पसारा जानकर उनसे अपने समान प्रेम और व्यवहार करना सार्वभौमिक व व्यावहारिक धर्म है। इसके अतिरिक्त सभी धर्म मनुष्य के बनाए हुए धर्म हैं जो स्वार्थ के आधार पर टिके हुए हैं।

# धार्मिक कट्टरपन: कारण और उपाय

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि सुरत-शब्द योग कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है बल्कि एक मार्ग का नाम है जिस मार्ग से होकर हमारी आत्मा इस भौतिक संसार में आई, दु:ख-सुख की भागी बनी और आवागमन के चक्र में आकर फंस गई। इसी मार्ग से होकर यह वापिस सतपुरूष के धाम में जा सकती है।

परमात्मा तक पहुंचने के इसी मार्ग ने अनेक धर्म सम्प्रदायों को जन्म दिया। जिसने जहां तक की यात्रा की उसने वहीं तक का वर्णन किया और एक नए धर्म की नींव रख दी गई। जिन यम व नियमों को अपनाकर उसने इस मार्ग की यात्रा की, वही यम-नियम आगे आने वाली प्रणाली के लिए आवश्यक मान लिए गए और परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग को कुछ सीमाएं दे दी गई और कहा गया कि इन सीमाओं के अन्दर रहकर ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। घोषणा की गई कि हमारा पैगम्बर, हमारा अवतार ही एकमात्र मसीहा है जो परमात्मा से मिलने का एक मात्र जरिया है। वहां किसी दूसरे अवतार, रसूल या सतगुरू की रसाई नहीं है। धर्म स्थलों पर या धार्मिक पुरोहित के दरबार में धन-दौलत के अम्बार लग गए और एक दूसरे को दबाने की एक होड़ लग गई। लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काने के लिए अवांछित हथकण्डों का प्रयोग किया गया। राजनीति में धर्म और धर्म में राजनीति के मेल ने इन दिवारों को और भी ऊंचा और सबल बना दिया। परिणाम स्वरूप धर्म को एक परिभाषा दे दी गई। मार्ग की निशानदेही कर दी गई। जिसने भी इस परिभाषा में बदलाव करने का प्रयत्न किया या सीमित दायरों को लांघने का प्रयत्न किया उसे ही काफिर और धर्मविरोधी कहा गया और उसे यातनाएं दी गई, मृत्युदण्ड दिए गए। न्याय करते-करते मनुष्य स्वयं ही ईश्वर के सिंहासन पर आसीन हो गया और वहां से खुदा के नाम पर फरमान जारी करने लगा और भोले-भाले लोगों की



भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने लगा। धन-दौलत और राजनैतिक आकांक्षा ने उसे बाहुबल प्रदान किया और देखते-देखते ये धर्म एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। खुदा के नाम पर या पैसे का लालच देकर राजनीति की आड़ में धर्म परिवर्तन करवाना तथाकथित धर्मों की दिनचर्या का हिस्सा बन गया। इस प्रवृति ने जन्म दिया धार्मिक कट्टरवाद को जिसकी अग्नि में आज सारा संसार जल रहा है। आज शायद ही कोई धर्म हो जो कट्टरवाद की इस अग्नि में न झुलस रहा हो।

धार्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है सीमाहीन होना। असीम, अनामी और अनंत गुणों वाले ईश्वर का अनुभव करना। सीमाओं में बंधा हुआ व्यक्ति असीम का अनुभव कैसे कर सकता है? किसी नाम का बंदी अनामी की झलक कैसे प्राप्त कर सकता है? जब तक निराकार का आधार नहीं है तब तक साकार रचना या साकार व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है।

हम मानसिक संसार में उलझ गए हैं, स्वप्न के संसार को ही सत्य मान बैठे हैं। आत्मिक संसार की अनुभूति नहीं करना चाहते हैं। स्वप्न से निकलकर गहरी निद्रा के आनंद से वंचित रहना चाहते हैं जहां से हम शारीरिक और मानसिक ताजगी खींच कर लाते हैं। शरीर और मन को एक नयी शक्ति प्रदान करते हैं। यही सुषुप्ति ताजगी का भण्डार है जहां जाकर हम भौतिक संसार का सारा द्वंद भूल जाते हैं, और असीम शान्ति का अनुभव करते हैं। ऐसी ताजगी स्वप्न के संसार में नहीं है। स्वप्न के संसार में या सूक्ष्म संसार में रहते हुए हम रंग-रूप, आकार-विकार, देव-अदेव, अच्छाई-बुराई के जंजाल से नहीं निकल पाते हैं और यही है हमारे द्वंद का कारण जिसे हम छोड़ना नहीं चाहते हैं। सुषुप्ति इसलिए ताजगी और आनन्द का भण्डार है कि वहां पर कोई अवतार या पैगम्बर व देवी-देवता या गीता, कुरान और बाईबल या मन्दिर, चर्च, गुरूद्वारा और मस्जिद का विचार मौजूद नहीं है। गंगा, मक्का या वेटिकन चर्च की वहां जाकर मौत हो जाती है। मन का सारा बिखराव एक बिन्दू पर आकर सिमट जाता है। शरीर और मन की

सारी ऊर्जाएं और उनकी दिवारें मिलकर एक हो जाती हैं।

सुषुप्ति के इस आनन्द को हम कोई नाम नहीं दे सकते हैं। उस आनन्द में रहते हुए हम उसके सुख को देख पाने या उसका वर्णन कर पाने में भी समर्थ नहीं हैं तो फिर हम उसकी सीमाओं को कैसे बांध सकते हैं, इसके दायरे कैसे निश्चित कर सकते हैं? क्या इसे कोई परिभाषा दी जा सकती है? यह संभव नहीं है। यही है धर्म के अरूप का रूप, यही है परमेश्वर के अव्यक्त की अभिव्यक्ति। जब तक हम स्वप्न के संसार से मुक्ति नहीं पा जाते हैं तब तक धार्मिक हिंसा और आतंकवाद के दानव से छुटकारा पाना नामुमकिन है। जब तक हम सभी आकारों को तिलांजली नहीं दे देते या मात्र उन्हें रास्ते का एक पड़ाव नहीं समझते, तक तक इससे मुक्ति पाना असंभव है।

ध्यान व अभ्यास के द्वारा मनुष्य सुषुप्ति से भी गहरी अवस्था का अनुभव कर सकता है जिसे शास्त्रों ने तुरीय अवस्था कहा है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, चेतना की यह चार अवस्थाएं हैं। तुरीय अवस्था ब्रह्म के निर्गुण और निराकार रूप का भेद खोलती है। इस अवस्था में चेतना के ऊपर कोई वृति तरंगित नहीं रहती है। जन्म-जन्मों के सारे संस्कार जलकर राख हो जाते हैं। व्यक्ति का व्यक्तिगत रूप ब्रह्म की चेतना में फनाह हो जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है। इस अनुभव के बाद मनुष्य को कण-कण व रचना ही हर कृति में एक ही ईश्वर की झलक दिखाई देती है। राम, कृष्ण, जीसस, मुहम्मद, नानक आदि सभी के अन्दर एक ही खुदा की खुदाई का अवतरण दिखाई देता है। देवी-देवता, पीर-पैगम्बर, अवतार इस यात्रा में मात्र एक पड़ाव हैं, मंजिल नहीं। जब मनुष्य के अन्दर धर्म के इस अनुभव का अवतरण होगा या इस अनुभव को प्राप्त करने का प्रयास होगा तभी संसार में शान्ति स्थापित हो सकती है। हिंसा व आतंकवाद के वातावरण से निजात पाई जा सकती है। इससे पहले सांसारिक एकता, विश्व-गांव



का प्रयास सार्थक नहीं हो सकता है। विश्व सुरक्षा, शान्ति और विकास का स्वप्न साकार नहीं हो सकता है।

सुरत-शब्द योग तुरीयातीत अवस्था तक पहुंचाने वाले इसी मार्ग का भेद खोलता है। परमात्मा के शब्द रूप (वर्ड, लोगोस, नादब्रह्म, कलमा इलाही) में रसाई करने का रहस्य प्रकट करता है। इस मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए एक ही अवश्यकता है और वह है प्रेम। प्रेम सीमित दायरों में रहकर नहीं किया जा सकता। आत्मिक प्रेम के लिए धर्म, सम्प्रदाय, रंग, रूप, जाति-देश का भेद स्वीकार्य नहीं हो सकता है। परमात्मा स्वयं प्रेम रूप है वहां किसी नफरत और भेदभाव का दाखला कैसे हो सकता है? तुलसीदास कहते हैं -

**प्रेम किया तिन ही प्रभु पायो।**
**बिना प्रेम कछु हाथ न आयो।**

# धर्म व धर्म के नाम पर गुरूओं की विलासिता

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि जिस आदमी का कोई सहारा नहीं होता है उसका सहारा परमात्मा होता है। इसके साथ-2 वह यह भी कहते थे कि जिस व्यक्ति ने राधास्वामी नाम अपने अन्तर में प्रकट कर लिया उसके पास तीन चीजें अवश्य आती हैं; उसके शरीर की व्याधियां कम हो जाती हैं, उसके कारोबार में बरकत होने लगती है और समाज में उसकी इज्जत भी बढ़ती है।

जो व्यक्ति परमात्मा की भक्ति करता है वह परमात्मा के अन्दर समाने लगता है। जिस प्रकार नमक पानी में डालने से उसमें घुलता जाता है और सर्वव्यापक बन जाता है उसी प्रकार व्यक्तिगत आत्मा विश्वात्मा अर्थात् परमात्मा की व्यापकता में समाकर उसी का रूप बन जाती है। विश्वात्मा के अंकुर से फूटने वाला कोई भी जीवन उसका अपना जीवन होता है, विश्वात्मा के किसी भी कोने में होने वाली धड़कन उसकी अपनी धड़कन की पहचान होती है और विश्वात्मा से उठने वाली कोई भी इच्छा उस आत्मा की निज अभिव्यक्ति होती है। अत: जब परमात्मा के भण्डार में किसी का सांझा हो जाता है तो ऐसे व्यक्ति की कोई भी हानि नहीं कर सकता है। उसके लिए आवश्यकता पड़ने पर हर तरह के साधन स्वयं ही प्रस्तुत होने लग जाते हैं। आवश्यकता है स्वयं को खोने की, अपने प्रीतम के ख्याल में जीने की। जो जितना अधिक उसमें जी पाता है, जो जितना अधिक परमात्मा के प्यार में स्वयं को मिटा पाता है या फनाह करता है वह उतना ही अधिक उसकी व्यापकता और सर्व-सामर्थ्य का हिस्सा बनता चला जाता है। कहने का अर्थ यह है कि विश्व स्तर पर कोई भी अच्छी या बुरी घटना है तो ऐसा व्यक्ति उस घटना में स्वयं को जीता है। घटना यदि परहित से संबंधित है तो वह उसके आनन्द को अनुभव करता है, यदि घटना विनाशकारी है तो वह प्रभु से सबकी भलाई के लिए प्रार्थना करता



है तथा प्रेम व करूणा की रेडिएशन चारों तरफ वातावरण में फैंकता है ताकि सुख व शान्ति की स्थापना हो सके। अर्थात् विश्वात्मा के किसी भी कोने में होने वाली छोटी या बड़ी घटना को ऐसा व्यक्ति अधिकता या न्यूनता के साथ स्वयं के अन्दर जीता है, उसका अनुभव करता है और उसके लिए किसी न किसी रूप में स्वयं को भी उत्तरदायी समझता है।

लेकिन यदि व्यक्ति किसी वस्तु की इच्छा लेकर परमात्मा की भक्ति करता है तो वह कभी भी उस ऊंचाई को नहीं छू सकता है जितनी ऊंचाई एक निस्वार्थ भक्त छू पाता है। वस्तुत: ऐसे भक्त के लिए ऊंचाई के कोई मायने ही नहीं हैं। भक्त अपना सर्वस्व खोने में माहिर है, उसे कुछ पाने की लालसा नहीं होती है। वह तो बार-बार विरह की अग्नि में इतना जलने लगता है कि परमात्मा की जुदाई एक पल के लिए सहन करना भी उसके लिए कठिन हो जाता है। ऐसी हालत आने पर उसे कोई जहर का प्याला भी पिलाना चाहे तो वह खुशी-खुशी पी जाता है। इतिहास अनेक पृष्ठों पर इसका गवाह है। यह है परमात्मा के लिए पूर्ण समर्पण और उसके यज्ञ में अहंकार की पूर्ण आहुति।

जब व्यक्ति की आत्मा अल्लाह में स्वयं को फनाह कर देती है तब व्यक्तिगत रूप का शून्य में विलय हो जाता है लेकिन वहां से विश्वात्मा के अस्तित्व का आरम्भ होता है। इस शून्य में स्वयं का विलीन होना महात्मा बुद्ध का मोक्ष है तो विश्वात्मा के अन्दर स्वयं को पा जाना शंकराचार्य का मोक्ष है। बुद्ध के लिए जो यात्रा की समाप्ति है वहीं से शंकराचार्य के लिए चेतना के दूसरे तल पर आत्मिक यात्रा का आरम्भ है। यही कारण है कि बुद्ध के लिए जो निषेधात्मक निरपेक्ष (आल-नैगेटिव अब्सोलूट) सत्ता का अनुभव है वही शंकराचार्य और श्री अरविन्द के लिए विधेयात्मक निरपेक्ष (आल-पोजिटिव अब्सोलूट) सत्ता का। श्री अरविन्द और शंकराचार्य के लिए परमात्मा सम्पूर्ण अस्तित्व का स्वामी है वही बुद्ध के लिए निर्वाण है, सृष्टि के सभी तत्वों का अपने-2 धर्मों में छिटक कर

बिखर जाना है या शून्य में विलीन हो जाना है। अत: दूसरे तल पर पहुंचा हुआ व्यक्ति स्वत: ही ईश्वर के एश्वर्य का भागी बन जाता है, उसका हिस्सा बन जाता है। वह किसी भी सुख या किसी प्रकार की दौलत का मोहताज कैसे हो सकता है? बल्कि सारे सुख और दौलत स्वयं उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं जिस प्रकार झील की तरफ पानी और कम दबाव के क्षेत्र की तरफ चारों तरफ से हवा का बहाव क्योंकि ऐसे मनुष्य ने शुन्यता के अनुभव को भी अपने अन्दर समेट लिया है, वह निषेधात्मक और विधेयात्मक दोनों प्रकार के अनुभव को प्राप्त हो गया है।

ऐसा अनुभव करने के बाद भी यदि किसी को भीख मांगने की आवश्यकता रह जाती है तो वह अनुभव अधूरा मालूम पड़ता है। ऐसी धर्म सत्ता का स्वामी होने के पश्चात भी यदि कोई महात्मा या स्वयं को संत कहलाने वाला व्यक्ति किसी के दान या चढ़ावे को स्वीकार करता है तो धिक्कार है ईश्वर की ऐसी एश्वर्यता को जिसे स्वयं को प्रकट करने के लिए किसी के आश्रय को तलाशना पड़े। लेकिन सारे धर्म और संत-महात्मा परमात्मा के नाम पर भोग और विलासिता का जीवन जी रहे हैं। यह परमात्मा की नहीं उनके अहंकार की अभिव्यक्ति है। ऐसे अहंकार की अभिव्यक्ति जिसे खुदा का नाम दे दिया गया है। जब तक ईश्वर के इस रूप की आराधना होती रहेगी तब तक समाज में तथाकथित धर्मों के आपसी वैमनस्य और नफ़रत का साम्राज्य पनपता ही रहेगा। धर्म के नाम पर स्वार्थ की राजनीति चलती रहेगी और भोले-भाले लोगों की भावनाओं को भड़काकर उनके धन और इज्जत का सौदा होता ही रहेगा। ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न कभी भी पूरा नहीं हो सकेगा।



# मनुष्य का अहंकार और उससे मुक्ति

गुरू नानक साहब कहते हैं-

**नानक नन्हा होय रहो जैसे नन्ही दूब।**
**और घास जल जाएंगे दूब रहेगी खूब।**

अर्थात् मनुष्य को कभी भी अहंकार नहीं करना चाहिए। आज तक जिसने भी अहंकार किया है काल ने उसी का मर्दन किया है। जिस आकाशगंगा में हम रहते हैं उसमें इस सूर्य जैसे अरबों सूर्य हैं और ब्रह्माण्ड में इस आकाशगंगा से भी विशालकाय अरबों-खरबों आकाशगंगाएं हैं। मनुष्य किस चीज के लिए अहंकार कर सकता है? उसकी इस ब्रह्माण्ड में स्थिति ही क्या है। सारे ब्रह्माण्ड को यदि छोटा करके मनुष्य के सामने रख दिया जाये तो वह इन आंखों से पृथ्वी को देख भी नहीं सकता है। पृथ्वी का आकार इतना सूक्ष्म हो जाएगा जितना कि मिट्टी के अन्दर एक सूक्ष्मजीवी का आकार जिसे बहुत बड़ी दूरबीन के द्वारा ही देखा जा सकता है। दूसरे अर्थों में ऐसा कहा जा सकता है कि पृथ्वी की स्थिति इस ब्रह्माण्ड में इस तरह है जिस प्रकार एक बड़े रेगिस्तान में रेत का एक कण। ऐसी परिस्थिति में इस ब्रह्माण्ड में मनुष्य की क्या हैसियत हो सकती है, इसका अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है। परमात्मा और परमात्मा की इस सृष्टि में फिर एक व्यक्ति या पृथ्वी की सारी मानव जाति के अहंकार का क्या अर्थ हो सकता है, यह भी स्पष्ट है। किसी बड़े देश का राजा यदि सारे संसार को अपने अधीन कर लेता है तो उस ईश्वर के सामने उसकी क्या बिसात है। कोई धर्म यदि सारे संसार को अपने कब्जे में ले लेता है तो उसका भी क्या अर्थ है। कोई बड़ा महात्मा यदि यह दावा करता है कि सम्पूर्ण संसार के लोग उसके अनुयायी हो गए हैं तो सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी के सामने यह भी अर्थशून्य है क्योंकि सारी पृथ्वी ही सूर्य के अन्दर घटने वाली घटनाओं और उसकी गति की मोहताज है। सूर्य के अन्दर होने वाली

छोटी सी हलचल पृथ्वी को पल के अन्दर विनाश की ओर धकेल सकती है फिर मानव की उसके सामने क्या अहमियत है।

जब प्रलय या महाप्रलय का समय आता है या कह सकते हैं कि जब ब्रह्माण्ड की ऊर्जा का सिकुड़ने का समय आता है तो सारी पृथ्वी व ब्रह्माण्ड ऊर्जा की तरंगों में बदल जाते हैं। क्या इसे रोका जा सकता है? कदापि नहीं क्योंकि ऐसी स्थिति या मांग केवल इस पृथ्वी से नहीं उठती है बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ऊर्जा के द्वारा जिसे विश्वकर्म भी कह सकते हैं यह कार्य आगे बढ़ता है। उस विश्वकर्म का हम और सम्पूर्ण पृथ्वी केवल एक अंश मात्र हैं। फिर कैसा अहंकार और कैसी स्वयं के विस्तार की इच्छा। यह सब हमारे व्यक्तिगत अहंकार की अभिव्यक्ति है लेकिन फिर भी सृष्टि के हर कण के अंदर सृष्टि के स्वामी या सर्व-समर्थ होने का गुण स्वत: ही मौजूद है इसीलिए हर व्यक्ति मुक्ति की कामना कर रहा है, सर्व-समर्थ का हिस्सा बनने का प्रयत्न कर रहा है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि हम सभी अपने स्वभाव के कारण मजबूर हैं। हर आत्मा का स्वभाव संसार की बेड़ियों से मुक्त होने का है, सृष्टि के गहनतम अस्तित्व में जाकर विलीन होने का है। इसलिए हम बार-2 गहरी निद्रा में जाते हैं। आजादी या मुक्ति आत्मा की स्वाभाविक जरूरत है। हमारे सारे प्रयत्न उसी तरफ जा रहे हैं- परमसुख को पाने की तरफ। उस परमसुख के आनन्द को हम छोटे-2 सुखों में ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। आत्मा सुख है, ज्ञान है, प्रेम है तो परमात्मा इन सब का भण्डार है और इस भण्डार में व्यक्ति की रसाई तभी हो सकती है जब हम व्यक्तिगत व सृष्टिगत अहंकार से मुक्ति पाएं। व्यक्तिगत या विश्वकर्म में भागीदार होना बंद करें। जो भी कर्म हो वही ब्रह्मयज्ञ या सतगुरू यज्ञ में आहुति बनकर गिरे। करने व कराने वाला बस वही रह जाए। फिर कर्म भी उसका है, करने वाला भी वही है और फल भी उसी का है। गीता ज्ञान भी इसी बात की पृष्टि करता है। ऐसा होने पर व्यक्ति हर प्रकार के कर्म और अहंकार से मुक्त हो जाता



है। वह केवल परमात्मा का एक यंत्र बनकर कार्य करता है और पल-2 यही प्रार्थना करता है कि हे खुदा! मुझे अपनी इच्छा के अधीन रखना, तेरी इच्छा की पूर्ति हो। मैं तेरे सृष्टि के मिशन में मददगार बन सकूं, उसमें कोई रूकावट न बनूं। यदि मेरी इच्छा की पूर्ति हुई तो वह अहंकार जनित हो सकती है, अज्ञानवश उसका उदय हो सकता है लेकिन तेरी इच्छा कभी भी स्वार्थपूर्ण नहीं हो सकती है क्योंकि तू सारे विश्व का नियंता है और सृष्टि की जरूरत के अनुसार ही तेरी इच्छा कार्य करती है।

ऐसी प्रार्थना एक ज्ञानी व्यक्ति ही कर सकता है, एक आसक्तिहीन व्यक्ति ही कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के पास जो भी कार्य आता है उसे वह ईश्वर का कार्य समझकर करता है, अपने पूरे प्रयत्न और पवित्र भावना के साथ करता है। जो कार्य उसे स्वयं के लिए अच्छा नहीं लगता वह उसे दूसरों के लिए नहीं करता है। कार्य करते-2 और पूरा प्रयत्न करने के बाद भी यदि उस कार्य का परिणाम किसी कारणवश दु:खदायी होता है तो उसे भी वह परमात्मा की इच्छा मानकर स्वीकार कर लेता है और उसमें भी अपने लिए कोई न कोई भलाई की बात निकाल लेता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति का नजरिया ही बदल जाता है। वह केवल अच्छाई के पक्ष को देखता है। यही है व्यक्तिगत अहंकार का ईश्वरीय या सतगुरू की इच्छा में विलय, जिससे व्यक्ति सुखी होता चला जाता है, आनन्दित होता चला जाता है और दूसरों के लिए सुख और आनन्द का स्रोत बन जाता है।

# मनुष्य का बढ़ता भय और धर्म का महत्त्व

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि दुनियां के लोग इतने भयभीत हैं कि भेड़ की तरह बिदकते और भागते हैं, केवल संत ऐसे होते हैं जो सच्चाई के रास्ते पर चलने का प्रयत्न करते हैं तथा शेर की तरह गरजते और गाजते हैं जिसके लिए उन्हें चाहे कष्ट ही क्यों न सहने पड़ें।

गौर से देखा जाए तो आज का हर व्यक्ति भयभीत है। वह आतंक मचा रहा है तो भयभीत है, वह भ्रष्टाचार कर रहा है तो भयभीत है, वह दूसरों को सता रहा है तो भयभीत है, वह उन्नति कर रहा है तो भयभीत है। वह स्वयं का जितना भी प्रसार व विस्तार कर रहा है उतना ही भयभीत होता जा रहा है। वह सफलता की जितनी भी ऊंचाई चढ़ता जा रहा है, उस ऊंचाई से गिरने का भय भी उसका उतना ही बढ़ता जा रहा है। जो उसके पास नहीं है उसे पाने की बैचेनी और जो उसके पास है उसे खोने का डर उसे हर वक्त सता रहा है।

कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य मानसिक रूप से कमजोर होता जा रहा है। अन्दर से भयभीत होता जा रहा है। इस भय से वह दिन के समय भी भयभीत है और रात की नींद में भी बेचैन है। अनजानी मंजिल के आशावाद ने बालू के रेत पर सपनों का महल खड़ा कर दिया है और इस सपनों के महल की दिवारों को ढहने से बचाने के लिए वह दिन-रात भाग रहा है। लहू-लूहान होने के लिए तैयार है लेकिन इस दौड़ से स्वयं को अलग करने के लिए तैयार नहीं है। तैयार भी कैसे हो क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड ही भाग रहा है। पृथ्वी भाग रही है, सूर्य भाग रहा है, सितारे और आकाश गंगाएं भाग रही हैं। क्या फिर भी कोई संभावना बच गई है कि जिससे वह इस आत्मघाती दौड़ से स्वयं को अलग कर सके? साक्षी होकर इस दौड़ को केवल देख सके और अपनी आत्मा को घायल होने से बचा सके? समानांतर दौड़ से बच सके जहां उसके आपस में भिड़ने के खतरे बढ़ गए हैं, और वह साक्षी होकर अपने लम्बवत



विकास की ओर ध्यान दे सके। वह सपनों में सूर्य और चांद को देख सके। एक जगह बैठकर ध्यान में आकाश के सितारों और आकाश गंगाओं का साक्षात्कार कर सके। विश्वात्मा का अनुभव कर सके।

यदि मनुष्य समानान्तर ही दौड़ता रहेगा तो उसकी दृष्टि छोटी होती चली जाएगी। अगले मोड़ पर अचानक क्या आने वाला है, उसकी दृष्टि देख न सकेगी और उसकी टक्कर होनी निश्चित हो जाएगी। जितनी रफतार बढ़ेगी उतनी ही अधिक दुर्घटनाएं और उतना ही बड़ा विस्फोट।

जितनी अधिक रफतार बढ़ती चली जाएगी, मनुष्य के दिल की धड़कन भी बढ़ती ही जाएगी। ऐसी अवस्था में मनुष्य किसी ऐसे आश्रय की तलाश करता है जहां पल दो पल के लिए वह शान्ति से बैठ सके और उसकी थकान मिट सके। बालू के रेत पर उसके सपनों का महल सुरक्षित रह सके और उसके व्यापार को कोई आंच न आए। इस पल दो पल के समय में वह धन-दौलत का दिल खोलकर दान भी करता है ताकि भ्रष्ट तरीके से कमाई गई दौलत में से अंशमात्र दान करके अपनी दौलत, अपने अम्पायर को पाक व पवित्र होने का प्रमाणपत्र दिला सके। ऐसे प्रमाणपत्र देने के लिए जगह-2 आध्यात्मिक स्कूल खोल दिए गए हैं। जब बीमार और घायल लोगों की कतारें लग गई हैं तो डाक्टरों की संख्या का बढ़ना भी स्वाभाविक है जो बीमार की क्षमता को देखकर उतना ही महंगा इंजेक्शन लगा देते हैं। ये स्कूल आश्रम, चर्च, मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे आदि नामों से जाने जाते हैं जहां धड़ल्ले से ऐसे प्रमाणपत्र बांटने का व्यापार किया जाता है। कुछ स्थानों पर पल दो पल की इस शान्ति के लिए फीस भी लगा दी गई है। परमात्मा के नाम पर खोले गए ये स्कूल हमारे भयभीत होने के कारण ही उन्नति के शिखर पर चढ़ गए हैं। आम आदमी की तरह ये भी भयभीत हैं क्योंकि इन्होंने भी धन-दौलत के अम्बार लगा लिए हैं। हर प्रकार के भोग का केन्द्र बन गए हैं। यहां पर समाज विरोधी तत्व खुलकर आश्रय पाते हैं।

इस भय के कारण पूजा के स्थानों की संख्या तो बढ़ ही गई है इसके साथ-साथ देवी-देवताओं की सूची में भी विस्तार आ गया है। हर रोज नए देवी-देवता प्रकट होने लगे हैं। ऋगवेद को देवता पैदा करने का कारखाना कहा गया है लेकिन अब तो इनकी संख्या आश्चर्यजनक तरीके से बढ़ रही है।

मनुष्य अंदर से विभाजित है इसलिए उसने जगह-जगह अपनी आस्था के केन्द्र बना लिए हैं। एक विभाजित व्यक्ति कभी भी संकल्पशील नहीं हो सकता है, उसका आत्म-विश्वास कभी भी मजबूत नहीं हो सकता है। हिन्दू समाज हमेशा ही इस विभाजन के कारण पिछड़ता रहा है। वह स्वयं की ताकत को स्वयं ही काटता रहा है। यही कारण है कि इतना ऊंचा उपनिषद् और धार्मिक ज्ञान होने के बावजूद भी यह कौम संसार के एक कोने में सिमट कर रह गई है। जो भी कौम एक इष्ट को मानकर चली है संसार में उसी का वर्चस्व कायम हुआ है, उसी का विस्तार हुआ है। ज्ञान की ऊंचाई और धार्मिक स्वतंत्रता अधिक होने के कारण हिन्दू धर्म में आत्मिक उन्नति की संभावना बेजोड़ है लेकिन आपसी धार्मिक विभाजन के कारण हमेशा ही इस धर्म को अपना अस्तित्व बचाने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ी है। यदि यह धर्म अपने ज्ञान की ऊंचाई को कायम रख सका तो संसार का मार्ग दर्शन भी कर सकता है लेकिन यदि यह ज्ञान कमजोर हुआ और इस ज्ञान के स्थान पर धार्मिक कट्टरवाद व साम्प्रदायिकता ने जोर पकड़ा तो उसी दिन यहूदी धर्म की तरह इस धर्म को भी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा, हथियार उठाकर स्वयं की रक्षा करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा जो संभवत: इस धर्म और सम्पूर्ण मानवता के लिए अपूर्व हानि होगी।

अत: मनुष्य को स्वयं के अन्दर मजबूत होने के लिए किसी भी प्रकार के मानसिक विभाजन से बचना होगा। यदि वह किसी भी प्रकार की सफलता की सीढ़ी चढ़ना चाहता है चाहे वह सांसारिक है या आत्मिक, उसे एक ही इष्ट अर्थात् अपनी ही आत्मा को इष्ट चुनना होगा जो कण-कण में मौजूद है और सर्वसमर्थ का अंश है। उसे देवी-देवताओं, अवतारों और पैगम्बरों के काल्पनिक मायाजाल से बाहर निकलना होगा जो मात्र मन का



एक भ्रम है, जिनके नाम पर उसे लगातार ठगा जा रहा है। किसी भी कार्य को आरम्भ करने के लिए एक हिन्दू के लिए गणेश की पूजा आवश्यक है लेकिन एक ईसाई और मुसलमान के लिए गणेश देवता का कोई भी अस्तित्व नहीं है। गणेश पूजन न होने की वजह से उनके कार्य में कोई रूकावट नहीं है बल्कि आज के संसार में सबसे अधिक प्रचार व प्रसार इन्हीं धर्मों का है। गणेश या हमारा कोई भी देवी-देवता उन लोगों के कार्य क्यों नहीं बिगाड़ता है? अत: हमें व्यक्तिगत, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास और मानवीय सुरक्षा के लिए एक ही आत्मिक इष्ट को अपनाना होगा जो अपने अतिश्रेष्ठ रूप में निराकार है, निर्गुण है लेकिन फिर भी सृष्टि के हर आकार में सूक्ष्म रूप से मौजूद है जिसके ऊपर स्थूलता के आवरण या पर्दे चढ़ गए हैं इसलिए कोई भी आकार या रूप मात्र उसकी छाया है, माया है। यही आदि शंकराचार्य जी कहते हैं। कोई भी धर्मशास्त्र या पूजा-स्थल उसका आंशिक प्रतिबिम्ब है। कोई भी अवतार या पैगम्बर केवल समय की एक आवश्यकता है मंजिल नहीं। हमारा इतिहास सीख लेने के लिए है लड़ने के लिए नहीं। वह महान है परन्तु पूजा करने के लिए नहीं। हम उन्नति के पथ पर आगे कदम बढ़ाने के लिए बेचैन हैं लेकिन पीछे की ओर देख रहे हैं इसलिए गढ़े में गिरने की सम्भावना भरपूर है। इसलिए जागने की आवश्यकता है। जाति-पाति, धर्म-सम्प्रदाय की दिवारों के पार झांकने की जरूरत है जहां परमशांति परमज्योति बनकर ठहरी है और हर मनुष्य के जन्मों से कुरेदे गए घावों पर मरहम लगाने के लिए आतुर है। यह परमशान्ति और परमज्योति कहीं बाहर नहीं मनुष्य के अन्दर ही है। इसे पाने के लिए किसी बाहरी स्रोत का गुलाम बनने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए सुकरात कहते हैं कि स्वयं की खोज करो। ईसा मसीह कहते हैं कि ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। भारतीय मनीषियों की खोज का तो आधार ही स्वयं मनुष्य रहा है- यत् पिण्डे तत् ब्रह्मण्डे। स्वयं के अन्दर परमात्मा की खोज करने पर ही व्यक्ति हर प्रकार के भय से निजात पा सकता है।

# आपसी मतभेद : एक आध्यात्मिक आवश्यकता

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि भक्ति चाहे पाताल में बैठकर करो वह आकाश में आकर प्रकट हो जाती है क्योंकि परमात्मा चप्पे-चप्पे में है। कण-कण में मौजूद है। जिस प्रकार पौधों को खाद व पानी जड़ों में देते हैं लेकिन उसका प्रभाव पेड़ के फूल, पत्ते और फलों में जाकर दिखाई देता है। कबीर साहब स्पष्ट कहते हैं-

**सतपुरूष एक पेड़ है, निरंजन वा की डारा।**
**त्रिदेवा शाखा भए, पत्ते संसारा।।**

सतपुरूष एक पेड़ के समान है, निरंजन या काल उसकी मुख्य डार है, त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) उसकी शाखाएं हैं और पत्ते सारा संसार है। शास्त्रों ने भी इस ब्रह्माण्ड को अश्वत्था वृक्ष कहा है जिसकी जड़ें ऊपर अनंत की ओर हैं और पत्ते नीचे की असीम गहराईयों का प्रतीक हैं।

यह आत्मा अपने पिता के धाम को छोड़कर नीचे के संसार में आ गई है जहां पर काल के थपेड़ों ने इसे अपने घर जाने की याद भुला दी है। इसी संसार को यह अपना घर समझने लगी है। यहीं की घाटियों में इसने अपना बसेरा कर लिया है। इसी क्षणभंगुर बालु के रेत पर बने महल के ऊपर अपना स्थायी पता अंकित कर दिया है। आर-पार गुजरने वाले पुल के ऊपर अपनी बसासत बना ली है। सुरत (आत्मा) को भूल का थप्पड़ लग गया है। कोई धुर घर का भेदी आए जो इसे इसकी असलीयत समझाए तभी इसकी समझ में आ सकता है लेकिन जितनी अधिक सोने की जंजीरें इसके चारों तरफ खिंचती जाती हैं यह उतनी ही उनमें रमती चली जाती है। उस तोते की तरह जो सोने के पिंजरे में कैद हो गया है। शुरू-शुरू में फड़फड़ाता है लेकिन उसके बाद घूमता है, आकाश में उड़ता है, लेकिन दाना-पानी लेने के लिए उसी पिंजरे में वापिस आ जाता है। पिंजरे में कैद रहना ही उसका स्वभाव बन गया है,



उसकी नियति बन गई है। आकाश की अपरिमित ऊंचाईयों की तरफ उसने देखना ही बंद कर दिया है, ऐसा विचार उठना ही उसके अन्दर से बन्द हो गया है या उसका साहस जवाब दे गया है।

जब कोई अनामी धाम का भेदी रहबर बन कर आता है और इसकी असलियत समझाता है कि देख कितना सुन्दर आसमान है तेरे सामने, कितनी मनमोहक रचना इंतजार कर रही है तेरी यात्रा का। तेरा कदम निकलने की देरी है, वह रहमदिल कुदरत तेरे सम्मान के लिए व्याकुल है, तेरी सहायता के लिए आतुर है। इसी यात्रा में तेरे प्राण भी छूट गए तो भी तुझे कोई गम नहीं होगा बल्कि अगली यात्रा की तैयारी के लिए तूं उत्साहित होगा। ऐसी बातें सुनकर वह अपना मूंह फेर लेता है या उसकी जान का ग्राहक बन जाता है। उसकी बुराई करने लगता है और दूसरों को भी एकजुट करने लग जाता है कि देखो यह व्यक्ति पगला गया है, इसकी बातों में नहीं फंसना।

इस सोने के पिंजरे ने व्यक्ति के पैरों को जकड़ दिया है, उसे भयभीत कर दिया है, उसकी जुबान को मुहरबन्द कर दिया है। उसके विचार को कुंठित कर दिया है। निरपक्ष बात कहना अब वह सम्भवत: भूल ही गया है। गलत को सही सिद्ध करने के लिए जीतोड़ कोशिश कर रहा है। अपने मन को समझा लिया है कि नहीं यही सही है। दस कदम पर नजर डालता है लेकिन ग्यारहवें कदम पर क्या हो गया है उसे देखने का साहस ही नहीं कर रहा है क्योंकि यह ग्यारहवां कदम उसके भ्रम को तोड़ने के लिए काफी है और वह अपने भ्रम को तोड़ना नहीं चाहता। उसने यदि इस भ्रम को तोड़ दिया तो उसकी दुनियां बरबाद हो जाएगी। यदि ग्यारहवें कदम को उसने सत्य मान लिया तो वह अपनी ही नजरों में झूठा पड़ जाएगा और लोग उसे झूठा कहें, यह वह सहन नहीं कर सकता है।

सच्चाई का पैमाना इतना विशाल है कि हमारी नजरें उसे माप नहीं सकती। जो दस कदम पर सच्चाई नजर आती है, हो सकता है वह बीसवें

कदम पर बिल्कुल उसके उल्ट हो। जो व्यक्ति के स्तर पर सत्य है, जो कार्य मनुष्य के जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हैं वही कार्य रचना के दूसरे जीवों या पेड़-पौधों के लिए अत्यंत घातक हो सकते हैं। रचना का एक स्तर दूसरे स्तर का विरोधी बनकर उसी के अंग लगकर खड़ा है। यदि ऐसा नहीं हो तो इस सृष्टि का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। हर स्तर की विभिन्नता ही इस सृष्टि के जीवन की संजीवनी बूटी है। विभिन्नता में एकता और एकता में विभिन्नता इस ब्रह्माण्ड का अखिल नियम है। जो इस नियम को व्यावहारिक रूप से अंगीकार करेगा वही अध्यात्म को समझ सकता है।

इस नियम को महावीर स्वामी ने पूर्णतया स्वीकार किया है, वे किसी भी वचन को असत्य स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि यह भी स्यात्, वह भी स्यात् अर्थात् शायद यह भी सत्य है, वह भी सत्य है। इसे जैन मत में 'सप्तभंगीनय'- कहा जाता है जो हर वस्तु को, हर विचार को उसके प्राकृतिक व वास्तविक रूप में मान्यता देता है। ऐसा मानने के बाद बुद्धि इस विचार पर आकर ठहर जाती है कि यदि मैं सत्य हूं तो शायद दूसरा भी सत्य है और ऐसा मानना अंग्रेजी की इस कहावत को भी सिद्ध करता है - लेट अस एग्री टू डिसएग्री अर्थात् आओ हम अहसहमति के लिए सहमत हो जाएं। यदि ऐसा हुआ तो मनुष्य की आपसी रंजिश और आपसी मतभेद समाप्त हो जाएंगे। इसके साथ ही शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक खुशहाली मनुष्य के दर पर स्वयं दस्तखत करेगी। ऐसे हृदय वाला व्यक्ति अध्यात्म की दौलत से लबालब होगा। उसका हर कार्य भक्तिमय होगा और कहीं पर की गई, किसी भी वक्त की गई उसकी भक्ति परमात्मा के दरबार में परवान चढ़ेगी।



# सकारात्मक दृष्टि से हर समस्या का समाधान

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि सतगुरू से सतगुरू को मांगो। वे कहते थे-

**क्या मांगू कुछ थिर न रहाई।**
**देखत नैन चले सब जाई।।**

हम परमात्मा से क्या मांग सकते हैं? एक बच्चा अपनी मां से क्या मांग सकता है? उसकी बुद्धि की पहुंच की क्या है। छोटे-छोटे खेल -खिलौने ही उसकी सबसे बड़ी रूची है। हम भी परमात्मा के सामने एक बच्चे के समान हैं। हमारा ज्ञान उसके ज्ञान के सामने अति तुच्छ है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह ब्रह्माण्ड इतना विशाल समुंद्र है जिसमें हम केवल अपनी रूचि की वस्तु ही ढूंढ सकते हैं। दूसरी वस्तुओं के बारे में हमारा ज्ञान अल्प है या शून्य है। यहां पर अनेक चीजों की तह लगी हुई है, एक स्तर की ऊर्जा का अस्तित्व दूसरे स्तर की ऊर्जा के अस्तित्व के ऊपर विरोधी स्वभाव लेकर खड़ा हुआ है। हमें तो यह भी नहीं पता कि हम जिस चीज की इच्छा कर रहे हैं वह चीज अस्तित्व के लिए क्या स्थान रखती है, उसका कितना महत्त्व है और वह कुदरत ने किस स्थान पर रखने के लिए तरासी है। यह कुदरत की शक्ति ही है जिसे शास्त्रों ने प्रकृति कहा है और प्रकृति के अन्दर से ही पुरूष (परमात्मा) की इच्छा फलीभूत होती है।

हम धन के लिए या किसी द्रव्य के लिए प्रार्थना करते हैं, कभी व्यापार की मांग करते हैं तो कभी बच्चों की तरक्की चाहते हैं। यह सब मांगने से पहले क्या हम यह सोच पाते हैं कि हमारे से अधिक जरूरतमंद व्यक्ति भी कोई हो सकता है जिसकी तपस्या उसी वस्तु को प्राप्त करने की हमारे से अधिक हो सकती है तथा जिसने उसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए तन, मन और धन की अधिक आहुति दी है और जो हमसे पहले ही कतार में खड़ा होकर एकमुश्त होकर टकटकी लगाए हुए है, ध्यान को

पकाए हुए है। हम बिना विचार किए कह देते हैं कि इस वस्तु पर मेरा अधिकार था क्योंकि मेरी काबलियत अधिक थी, मेरा रिकार्ड अच्छा था। हमारे विचार में रिकार्ड के नम्बर अधिक हो सकते हैं लेकिन जरूरी नहीं है कि कुदरत के जिस स्थान पर जाने के लिए आपका चयन हो रहा है उसके लिए आप पूर्णतया योग्य हों। यह भी हो सकता है कि जिस स्थान पर आप जाना चाहते हैं उस स्थान की ऊर्जा के साथ आपका मेल न हो और वह आपको वापिस धकेल रही हो। अनेकों कारण हो सकते हैं। हम केवल एक तरह का या सीमित दृष्टिकोण रखते हैं और उसी के अनुसार आंकलन करते हैं जो कुदरत की बहुकोणिय व्यवस्था के अन्दर पूर्णतया अवांछित है। यह भी तो हो सकता है कि विकास के कार्य को बनाए रखने के लिए समय ऐसा चल रहा हो जिसमें तामसिक या राजसिक शक्तियों की आवश्यकता हो या हमने स्वयं ही अपने लिए संघर्ष के जीवन का चुनाव किया हो या हमारा दृष्टिकोण नकारात्मक हो जो उस स्थान की ऊर्जा की पूर्ति न करता हो।

यदि व्यक्ति को जीवन में कामयाब होना है तो उसे सकारात्मक नजरिया रखना होगा। अपने साथ-साथ चल रहे सिस्टम को परस्पर सहयोग देना होगा, आपस का प्रेम बढ़ाना होगा क्योंकि जीवन की इस यात्रा में हम अकेले नहीं हैं। हम अपने चारों तरफ अनेक प्रकार की ऊर्जाओं के रस्सों से बंधे हुए हैं। हम स्वार्थी होकर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। यह कुदरत के नियम के विपरीत है। यह समझ लेने की जरूरत है कि बीज को नष्ट होना होगा, बीज की पूर्णता इसी में है। यदि उस बीज की चेतना होश में आ जाए, विवेकशील हो जाए तो वह अपने रहते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहेगा जो उसके विनाश होने पर नए पौधे को जन्म दे सके, जिससे उस जैसे हजारों बीजों का निर्माण हो सके। जो स्वस्थ हों और किसी भी विकार से ग्रसित न हों ताकि उस बीज की ऊर्जा उसके व उसकी संतति के जीवन को आगे बढ़ाने में मदद करे।



उसका विनाश नहीं करे। यही हमारे जीवन का लक्ष्य है। परमात्मा की सृष्टि भी इसी इच्छा के अधीन आगे बढ़ रही है।

कहने का अभिप्राय यह है कि हमें प्रयत्न अवश्य करना है, प्रयत्न हमें करना ही होगा यह हमारे वश की बात नहीं है लेकिन मनुष्य अपने प्रयत्न में इतना ध्यान अवश्य रख सकता है कि हमारा प्रयत्न दूसरों को जीवन दे, प्रकृति के कार्य में बाधक न बने। हमारी उपस्थिति हमारा अहित चाहने वाले के लिए भी लाभकारी हो, हानिकारक नहीं। विचारों में मतभेद हो सकते हैं, मतभेद होना प्रकृति के कार्य में आवश्यक भी है लेकिन अपने मतभेदों के रहते हम रचनात्मक हों, नकारात्मक नहीं। हर किसी को खुश रखना भी यहां संभव नहीं है क्योंकि हम जो कार्य कर रहे हैं वही कार्य कुदरत की व्यवस्था के अन्दर किसी दूसरे व्यक्ति के स्वभाव के विपरीत है और उसके कार्य को गल्त भी सिद्ध कर रहा है, उसके अहंकार को आहत कर रहा है या जो कार्य दूसरा व्यक्ति कर रहा है वह कहीं न कहीं किसी और के अहंकार को हानि पहुंचा रहा है लेकिन अहंकार भी जीवन की आवश्यकता है क्योंकि होश भी तो अहंकार की ही परीणति है।

अपना प्रयत्न करें लेकिन यदि वह प्रयत्न स्वयंजनित है, कुदरत की मांग के अधीन है तो वह प्रयत्न दिव्य है। ऐसा प्रयत्न ईश्वर के यज्ञ में आहुति है, उसका फल भी दिव्य ही होगा। श्रीमद् भगवद्गीता ऐसे ही कर्म का उपदेश करती है जो इच्छारहित हो, स्वार्थ जनित न हो। गीता कहती है कि जो होता है सही होता है और जो होगा वह भी सही होगा, ईश्वर की इच्छा से ही होगा, उसके रोकने का कोई उपाय भी नहीं है। इसलिए व्यर्थ की चिंता मत करो। शिकायत करने से कोई लाभ नहीं है। संतमत इसी संदेश को दूसरी तरह कहता है कि सतगुरू के भाणे में रहो, जो होता है सतगुरू की मौज से होता है, उसकी मर्जी से होता है। सिक्ख धर्म का यही मुख्य उपदेश है।

हम परमात्मा से कौन सी प्रार्थना कर सकते हैं? क्या परमात्मा को हमारी जरूरत का भान नहीं है? फिर भी प्रार्थना ऐसी हो जिसमें स्वयं का कोई स्वार्थ न हो, जो व्यक्तिगत न हो। प्रार्थना ऐसी हो जिससे सम्पूर्ण मानवता की भलाई सिद्ध हो। लेकिन सबसे उत्तम प्रार्थना वह है जिसमें परमात्मा से या सतगुरू से कुछ भी न मांगा जाए क्योंकि हम केवल मानव ही तो नहीं है, हमारी आत्मा का एक अंश सृष्टि की दूसरी रचनाओं में भी तो है। हमारे अन्दर एक पौधे की आत्मा भी है, एक पक्षी, पशु व पत्थर की आत्मा भी है जो समय-2 पर अपने होने का प्रमाण देती रहती है। यदि हम अपने लिए या मानवता के लिए परमात्मा से कुछ मांगते हैं तो हो सकता है वह प्रार्थना सृष्टि की दूसरी व्यवस्था के लिए अहितकारी सिद्ध हो। इसलिए शास्त्र ने प्रकृति की हर वस्तु के लिए शान्ति की प्रार्थना की है, जिसमें कहा गया है कि धरती शांत हो, आकाश शांत हो, वनस्पती शांत हो, देवता शांत हों, मानव शांत हो, आदि-आदि।

जब हर प्रकार की प्रार्थना संतुष्ट हो जाती है तब संतमत की प्राप्ति होती है लेकिन यह प्राप्ति साधारण प्राप्ति नहीं है इसके लिए अपनी आत्मा का मंथन करना होता है। शरीर, प्राण और मन की चेतना आत्मिक चेतना में लीन हो जाती है। आत्मिक नूर सारे शरीर व मन को अपने आलोक से आलोकित कर देता है। आत्मा के अन्दर ईश्वर या सतगुरू का जन्म होता है जो साधक के हर कार्य को स्वयं ही संभाल लेता है। अब वह किससे प्रार्थना करें। इस अवस्था में आकर कबीर साहब कहते हैं-

**मन जो सुमरे राम को, राम बसे घट मांहि।**
**अब मन रामहि हो रहा शीश नवाऊं काहि।।**



# आतंकवाद और विश्व-गांव का सपना

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि दु:ख मनुष्य का मित्र होता है। दु:ख में आदमी पल-पल खुद के निकट होता है और जो खुद के नजदीक रहता है वह खुदा के दर्शन करता है। वे कहते थे:

**सुख के माथे सिल पड़ो, नाम हिये से जाय।**
**बलिहारी वा दु:ख जो पल पल नाम रटाय।।**

दु:ख व असफलता ही मनुष्य को आत्ममंथन का मौका देते हैं जहां वह अपनी कमियों की तरफ झांकता है और भविष्य के लिए उनके प्रति सावधान हो जाता है। आत्ममंथन का अर्थ है आत्मा के निकट होना, स्वयं के नजदीक बैठना। आज व्यक्ति स्वयं के निकट बैठ ही कहां पाता है, वह तो स्वयं से दूर भागने के बहाने ढूंढता रहता है।

उपनिषद् आध्यात्मिक ज्ञान का उत्तम स्रोत है। उप का अर्थ है निकट, निषद् का अर्थ है बैठना अर्थात् गुरू के निकट बैठना। स्वयं के निकट बैठने के लिए या स्वयं की खोज करने के लिए गुरू तो एक बहाना है जिस प्रकार बच्चे को अपने पैरों पर चलने के लिए माता-पिता की उंगली के सहारे की जरूरत पड़ती है। माँ-बाप तो केवल एक सीढ़ी है और जब बच्चा चलना सीख जाता है तो वह सीढ़ी को छोड़ देता है, सीढ़ी का त्याग करना ही पड़ता है, इसके सिवा कोई उपाय भी नहीं है।

गुरू भी एक सीढ़ी है लेकिन गुरू के धारण किए बगैर अहंकार का विसर्जन होना अति कठिन है। इसके लिए जीवित गुरू की महता अधिक है। शास्त्रों को गुरू मानकर व्यक्ति समर्पण कर सकता है, किसी देवता या अवतार की मूर्ति के सामने बैठकर हाथ जोड़कर समर्पण करना आसान है लेकिन शरीरधारी गुरू के सामने समर्पण करना अति कठिन है, क्योंकि उसके सामने जाते ही आप जो कुछ पहले से जानते हैं वह सब भूलना पड़ता

है। आपके विचारों के संकल्प-विकल्प, आपकी इच्छाएं गुरू और आपके बीच अहंकार की दीवार खड़ी करती हैं। इसलिए पढ़े लिखे व्यक्ति के लिए शरीरधारी सतगुरू को समर्पण करना अति कठिन है। एक अनपढ़ या ज्ञान शून्य व्यक्ति के लिए समर्पण करना आसान है। लेकिन ज्ञान से पूरित व्यक्ति यदि अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है तो उस व्यक्ति की एक दिन इतिहास में कहानी बनती है। वह अपने गुरू की नौका को सातवें आसमान पर पहुंचा देता है।

चाहे गुरू अनपढ़ है और उसने यदि आध्यात्मिक दौलत को इकट्ठा कर लिया है तो वहां पर एक विशेष प्रकार की कशिश पैदा हो जाती है, खिंचाव पैदा हो जाता है जिसके कारण वहां पर हर प्रकार से संपन्न व्यक्ति स्वयं ही खिंचकर आने लगता है। वह दौलत जो इकट्ठी की गई है उसे किसी न किसी साधन के द्वारा बांटना पड़ता है, कोई न कोई माध्यम स्वयं ही चलकर आ जाता है जो उसकी अभिव्यक्ति करता है। उसका पसारा करता है। श्री अरविन्द कहते हैं यदि मनुष्य ज्ञान के इस फैलाव में रूकावट बनता है तो प्रकृति इसके लिए आक्रामक तरीके अपनाती है। वे कहते हैं कि प्राचीन यूनान में सूकरात, प्लेटो और अरस्तु के समय में जब ज्ञान का समुंद्र लबालब भरने लगा तो कुदरत की ताकतें अपनी पूर्ति के लिए उसे अपनी तरफ खींचने लगी। बीच की छोटी-छोटी रियासतें इसके प्रचार व प्रसार में रूकावटें थी, धार्मिक अंधविश्वास और कुरीतियां अत्यधिक थे। अपने-अपने देवता, दैविक शक्तियां और धार्मिक बटवारे के कारण वह ज्ञान यूनान के शहरों में छटपटा रहा था। उस ज्ञान के फैलाव के लिए प्रकृति ने सिकन्दर महान का चुनाव किया जो अरस्तु का शिष्य था। उसका संसार को जीतने का सपना प्रकृति के इस कार्य में सहायक बना। यही नहीं उसके बाद रोमन साम्राज्य और सारी ईसाईयत भी यूनान के उस ज्ञान की ऋणी है तथा आज भी उसी ज्ञान को आधार बनाकर ईसाई धर्म और पश्चिमी विज्ञान आगे बढ़ रहा है। यूनान



का यह प्राचीन ज्ञान भारतीय सभ्यता से बहुत मेल खाता है। श्री अरविन्द प्रकृति के ऐसे कार्य को उसकी निर्दयी आवश्कता कहते हैं। जब मनुष्य उसके कार्य में बाधा डालता है या शांति से प्रकृति के कार्य को आगे नहीं बढ़ने देता है तो प्रकृति इसी प्रकार निर्दयी होकर सृष्टि के कार्य को आगे बढ़ाती है तथा मनुष्य का उद्धार करती है।

जब सीधे तरीके से कुदरत की बात नहीं मानी जाती है तो उसके लिए हमें उसका रोष सहना पड़ता है। हमारे शरीर में जब-2 विजातीय पदार्थ बढ़ता है तब-2 शरीर को बीमारी के अन्दर से गुजरना पड़ता है ताकि शरीर उस विजातीय पदार्थ से निजात पा सके। समाज में जब-2 अधर्म रूपी विजातीय पदार्थ बढ़ता है तब तब समाज को अशांति और युद्ध जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। ये बातें कष्टदायक हैं, विनाशक हैं लेकिन प्रकृति की आवश्यकता भी हैं। इन कष्टों के बगैर शरीर या समाज में निखार नहीं आता है, मजबूती नहीं मिलती है। परन्तु अधिकतम हानि तब होती है जब शरीर के अन्दर बीमारी अपना घर कर लेती है और समाज आतंकवाद जैसी बीमारी का शिकार हो जाता है लेकिन विकास और उन्नति को यदि आत्मसात करना है तो एक-दूसरे की सीमाएं अवश्य ही ध्वस्त होंगी। परिणामस्वरूप आत्मरक्षा के लिए किसी न किसी बहाने छोटे-बड़े ग्रुप बनते ही रहेंगे और आतंकवाद जैसी समस्या से दो-दो हाथ करने ही होंगे। अतः सार्वभौमिक विकास, सुरक्षा और शान्ति के लिए आतंकवाद जैसी समस्याएं समय की आवश्यकता प्रतीत होती हैं ताकि मानवता की सारी शक्तियों को एकता के सूत्र में बंधने के लिए मजबूर होना पड़े और बीच की विभाजन करने वाली छोटी-2 दीवारें ध्वस्त हो सकें।

सारे संसार को यदि एक गांव (ग्लोबल विलेज) बनाना है तो या तो सारी विभिन्नता को अपनाना होगा या बीच की धर्म-कर्म, विचार, संस्कृति आदि की सारी दिवारों को विलीन करके एक नई सभ्यता को जन्म देना होगा। मानवीय सभ्यता या केवल इन्सानियत के धर्म को

सर्वोपरि मानना होगा जिसमें किसी अवतार या पैगम्बर को स्थान नहीं मिल सकेगा, यदि स्थान मिलेगा तो वह मार्ग मंजिल न बन सकेगा, मंजिल होगा केवल प्रेम। प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल। क्योंकि प्रेम करने से ही सब कुछ जन्मता है और प्रेम के अन्दर ही अंत में सब समा जाता है। अकबर बादशाह दादू महाराज से पूछते हैं कि खुदा की जात क्या है? उसका रंग और वजूद क्या है उसे कैसे संग किया जा सकता है? दादू महाराज अकबर को जवाब में कहते हैं:

**इश्क खुदा की जात है, इश्क खुदा का रंग।**
**इश्क खुदाई वजूद है, इश्क खुदा के संग।।**

अत: समाज या इंसान की जितनी भी विषम अवस्थाएं हैं वे सभी मनुष्य को संघर्ष करने का मौका प्रदान करती हैं उसे आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। यही विकास का सोपान है। मंजिल की तरफ ले जाने का जरिया है। ये कठिनाईयां और कष्ट ही हैं जो मनुष्य की असली पहचान करवाते हैं और मनुष्य का मनुष्य के साथ गहरा मिलन करवाते हैं तथा आपस का प्रेम बढ़ाते हैं। संघर्ष से जूझने की क्षमता देते हैं। एक आदर्श व्यक्ति या आदर्श विश्व गांव की स्थापना के लिए इनसे जूझना और विजय प्राप्त करना मनुष्य की मजबूरी भी है और आवश्यकता भी। समुंद्र मंथन से विष भी निकलता है और अमृतपान भी किया जाता है। यह एक चुनौती है जिसे समझने की आवश्यकता है।



# खाड़ी युद्ध : कारण और उपाय

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि कोई भी व्यक्ति हो, चाहे वह गृहस्थी है या साधु उसे कर्म करना ही होगा। जो व्यक्ति कर्म नहीं करता वह भक्ति भी नहीं कर सकता है। तुलसी साहब कहते हैं-

**कर्म प्रधान विश्व रच राखा।**
**जो जस किन्हौ तैसा चाखा।।**

व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है, यह भगवद्गीता का संदेश है। लेकिन संसार के अन्दर आज जो घटनाएं घट रही हैं वे इस तथ्य को कहां तक सिद्ध करती हैं? ऐसा प्रतीत होता है जैसे अमेरिका और ईराक के युद्ध ने सभी आदर्श, सभी जीवन मूल्यों की हत्या कर दी है। ईसाईयत और इस्लाम की लड़ाई आज से नहीं है बहुत पुरानी है। इसका आंकलन करने के लिए हमें इन धर्मों की चेतना की गहराई में जाकर चिंतन करना होगा।

संसार के सभी देशों की सूची में यदि देखा जाए तो हम पाते हैं कि ईसाई धर्म को मानने वाले देश अधिक ईमानदार देश हैं जबकि भारत और सभी इस्लामिक देश अत्यधिक भ्रष्ट देशों की सूची में शामिल हैं लेकिन दूसरी तरफ देखा जाए तो ईसाई व्यक्ति स्वभाव से ही लड़ाका है। उसे कोई खूबसूरत सा बहाना चाहिए, वह लड़ने के लिए तैयार रहता है। इसका कारण यह है कि ईसाई धर्म एक घायल धर्म है। सूली पर लटके हुए ईसा मसीह की नसों से बहता हुआ खून उसे कभी संतुष्ट नहीं होने देगा और वह हमेशा ही आन्दोलित होता रहेगा। यह आन्दोलन उसकी चेतना के अन्दर

समा गया है। इसके साथ ही धरती पर स्वर्ग बनाने का ईसाह मसीह का सपना ईसाई धर्म को चैन से नहीं बैठने देगा और वह हमेशा अपने विस्तार की कामना करता रहेगा। कभी व्यापार का बहाना लेकर तो कभी मानवता की भलाई का बहाना लेकर। उसके पास दूसरों से अधिक आदर्श और ईमानदार होने की शक्ति है तो दूसरी तरफ उसका लड़ने का स्वभाव संसार में उसे फैलने का गुण प्रदान करता है लेकिन दूसरी अमूल्य सभ्यताओं के प्रति उसका असहनशील, अहंकारी और स्वार्थी नजरिया उसके मानसिक दिवालिएपन को सिद्ध करता है। ईसाई धर्म में एक शक्ति और भी है जिसने समय-2 पर उसकी नींव मजबूत की है, वह है उसके धर्माधिकारियों का ब्रह्मचर्य के प्रति संकल्प। चर्च के पादरियों का जीवन आज भी कठोर तपस्या का द्योतक है। ऐसे धर्म की जड़ें स्वत: ही मजबूत हो जाती हैं।

दूसरी तरफ इस्लाम धर्म बहुत ही संकल्पशील धर्म है। एक मुस्लमान के अन्दर धार्मिक भावना और विश्वास जितना अधिक है उतना शायद संसार के किसी भी धर्म में नहीं है। एक सच्चा मुसलमान हर रोज पांच बार नमाज अदा करता है, खुदा को याद करता है। वह साल में एक बार एक महीने के लिए रोजे रखता है और जीवन में कम से कम एक बार हज अवश्य करता है। स्पष्ट है कि उसका हर कार्य खुदा की याद में पूर्ण होता है। इतना अधिक खुदा का स्मरण किसी भी व्यक्ति के लिए आसान नहीं हैं लेकिन दूसरी तरफ उसमें कुछ बुराइयां भी ऐसी हैं जो एक मुस्लमान के स्वभाव में जड़ता लाती हैं। उसे कट्टर बनाती हैं। इस्लाम धर्म में जब रोजे खोले जाते हैं तो उसमें पशु की हत्या की जाती है और उसका भोजन



किया जाता है। यह कर्म मनुष्य के अन्दर निर्दयता के साथ-साथ पशुता व जड़ता भी लाता है, आत्मिक विवेक का नाश करता है क्योंकि यह एक तमोगुणी कर्म है। ऐसे धर्म के अन्दर आतंकवाद का पैदा होना अस्वाभाविक नहीं है। इसके अतिरिक्त यह धर्म संसार के प्रति अत्यधिक आसक्ति पैदा करता है। इस्लाम में व्यक्ति कितनी भी पत्नियां रख सकता है और स्वेच्छा से उनका भोग कर सकता है। काम वासना का अधिक भोग मनुष्य के अन्दर कमजोरी पैदा करता है और उसके पौरूष तेज को कम करता है।

प्रकृति के एक छोर पर विज्ञान है, विकास की झड़ी लगी हुई है, वहीं दूसरा छोर कहता है कि मैं विज्ञान का बहिष्कार करता हूं, अतीत और धर्मशास्त्र के हर शब्द से जुड़ा रहना चाहता हूं, उसकी कीमत पर मुझे विकास नहीं चाहिए। औरतों की स्थिति भयावह है, उन्हें भोग की एक वस्तु समझा जाता है। मुल्ला का एक-एक शब्द फरमान बन जाता है। निरपराध लोगों की हत्या करना जेहाद (धार्मिक युद्ध) कहलाता है। इस्लाम के सूफी सम्प्रदाय में मन रूपी भेड़िए की हत्या करना अर्थात् मन का संयम करना जेहाद कहा गया है। मनुष्य धर्म के नाम पर कुछ भी फरमान जारी कर देता है लेकिन कुदरत किसी की परवाह नही करती है, यदि वह परवाह करती तो कुदरत के तुफान और भूकम्प किसी भी धार्मिक स्थान को नष्ट न करते, किसी भी धार्मिक शास्त्र को हानि न पहुंचाते लेकिन ऐसा नहीं है, कुदरत सभी जीवों के साथ समान व्यवहार करती है। सूर्य सबको समान रूप से रोशनी देता है, और समय अपनी घड़ी की टिक-टिक को किसी के लिए भी थमने नहीं देता है। इस कर्म-प्रधान संसार में समय के सामने किसी की बिसात नहीं है। सूर्य, नक्षत्र, आकाशगंगाएं

इस समय (काल) के सामने बौने हैं। वह किसी की पहचान नहीं करता है, फिर यह पृथ्वी और मनुष्य उसके सामने क्या अस्तित्व रखते हैं? मनुष्य के बनाए हुए धर्म मात्र हमारे लिए एक बहकावा हैं, छलकपट हैं। सभी को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना होगा, चाहे वह अवतार और पैगम्बर भी क्यों न हो। जब भी प्रकृति के अन्दर असंतुलन होगा तभी-तभी प्रकृति की विभिषिका और ताण्डव से हम बच नहीं सकते हैं।

बहाना कुछ भी हो, प्रकृति के असंतुलन ने सम्भवत: दो पारम्परिक दुश्मनों को आमने-सामने आने पर मजबूर कर दिया जिसका परिणाम अमेरिका-ईराक युद्ध के रूप में हमारे सामने आया। धर्मों के स्वभाव और इनकी चेतना की गहराई में बैठे हुए घायल और अड़ियल संस्कारों ने इस युद्ध को और भी आसान बना दिया।

ईसाई और इस्लाम दोनों ही धर्म संसार में आसक्ति पैदा करते हैं क्योंकि ये दोनों ही पृथ्वी पर ईश्वर या खुदा के साम्राज्य की स्थापना की कामना करते हैं। इसके विपरीत हिन्दू धर्म की मुक्ति का आरम्भ ही सांसारिक विरक्ति से होता है। इसलिए हिन्दू धर्म के लिए सांसारिक उपलब्धि तुच्छ मानी गई है क्योंकि यह मनुष्य के अन्दर तृष्णा पैदा करती है और यही तृष्णा हमारे अन्दर अशांति पैदा करती है, मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बनाती है, आपस में नफ़रत और वैमनस्य को जन्म देती है जिससे आपसी कलह और युद्ध होते हैं। यही कारण है कि इतना ऊंचा ज्ञान होने के बावजूद भी हिन्दू धर्म ने कभी भी अपने प्रचार व प्रसार के लिए खून की होलियां नहीं खेली। संसार के हर जीव के लिए सुखी रहने की प्रार्थना की। जो भी आक्रमणकारी या धार्मिक मिशनरी यहां आया वह या



तो यहीं रच-बस गया या वापिस चला गया। हिन्दू संस्कृति विश्व की अनूठी और अमुल्य धरोहर है। यदि ज्ञान, सहनशीलता और विवेकख्याति को संसार में बनाए रखना है तो संसार के हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इस अमूल्य धरोहर को हमेशा के लिए संजो कर रखने का प्रयत्न करे। तभी इस कर्म प्रधान विश्व में कर्म की विभिन्नता के साथ-2 ज्ञान की विभिन्नता भी बरकरार रह सकेगी और संसार के सभी धर्मों के लोग शांतिपूर्ण सहवास की शिक्षा इस धर्म से लेते रहेगें। हिन्दू धर्म की मुख्य शिक्षा यही है जिस में ईश्वर से प्रार्थना कि गई है कि संसार में सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी भद्रपुरूष हों और किसी को कोई दु:ख न हो।

**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग भवेत।।**

# मानसिक तनाव और जीवन की व्याधियां

मनुष्य के अन्दर मन का होना कुदरत का सबसे बड़ा वरदान है। ऐसा नहीं है कि दूसरे जीवों में मन नहीं होता है, उनके अन्दर मन सुप्त अवस्था में रहता है या कम अभिव्यक्त होता है लेकिन मनुष्य के शरीर की हर कोशिका में मन विकसित अवस्था में होता है। यह मन ही है जो उसे वासनाओं का गुलाम बना देता है और जीवन शक्ति को ग्रहण लगा देता है। यह मन ही है जो महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कबीर या नानक को संयमित जीवन जीने और इन्द्रिय निग्रह के लिए प्रोत्साहित करता है और उन्हें अमर बना देता है, उन्हें भगवान बना देता है।

महात्माओं ने कहा है कि मन मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन है इसलिए इसे मारना है। मन को मारना नहीं है। मन को कभी मारा नहीं जा सकता है। इसकी ऊर्जा की धार को बदला अवश्य जा सकता है। मन के अन्दर असीम ताकत है यह ताकत बड़े से बड़ा कार्य करने में समर्थ है। मन की ताकत चलते-2 इतिहास की धारा का रूख विपरीत दिशा में मोड़ सकती है। मन व आत्मा से मजबूत एक ही व्यक्ति हजारों आदमियों को पल में समर्पण करने के लिए मजबूर कर सकता है। शरीर की ताकत मन की ताकत के सामने कुछ भी नहीं है लेकिन मन की मजबूती वहीं होती है जहां पर आत्मिक बल होता है। इसलिए आत्मा की ताकत सर्वोपरि है। जो व्यक्ति आत्मिक गुणों से भरपूर है, मन उसका गुलाम होता है। इसके विपरित वासनाओं से परिपूर्ण व्यक्ति के लिए मन उसका स्वामी होता है। ऐसा व्यक्ति मन का गुलाम होता है। मन के बारे में जितना अधिक लिखा जाए उतना ही कम है। नानक साहब कहते हैं-**नानक मन जीते जुग जीते**। कबीर साहब कहते हैं-



**कबीर मन मानियां तो हरि जानियां।** रविदास-**मन चंगा तो कठौती में गंगा।**

आज के समय में व्यक्ति मानसिक रूप से कमजोर होता जा रहा है। इसलिए वह तनाव से भरा हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह सांसारिक सुखों का भोग भी पूरी तरह से करना चाहता है और अपने कार्यक्षेत्र में अद्वितीय भी होना चाहता है। पदार्थ की भूख इतनी अधिक बढ़ गई है कि वह उसे प्राप्त करने के लिए जीवन मूल्यों की तिलांजली देने के लिए भी तैयार है। बाहर का विस्तार करता जा रहा है लेकिन अन्दर का उसका खालीपन बढ़ता ही जा रहा है। बाहर और अन्दर का यह असंतुलन उसकी मानसिक चेतना के खिंचाव का कारण है।

जीवन की बढ़ती प्रतिस्पर्धा उसके लिए और भी घातक सिद्ध हो रही है। वह हर समय चौकन्ना रहता है ताकि जीवन की दौड़ में पीछे न छूट जाए। इसके साथ-2 उसका भय भी बढ़ता जा रहा है ताकि उसकी उपलब्धि को कोई छीन न ले। उसकी मानसिक चेतना में हर समय कंपन बनी रहती है जो उसके हृदय को भी प्रभावित करती है। यही कारण है कि उसके अन्दर एक घुटन बनी रहती है जो उसे अस्थिर बनाती है और उसके स्वास्थय को भी प्रभावित करती है।

मन की इस अस्थिरता और कमजोरी के कारण वह अकेला होने लगा है क्योंकि दूसरों के साथ चलने के लिए उसका दूसरों के प्रति शांतिपूर्ण व सहनशील होना जरूरी है, समर्पण की भावना होना जरूरी है लेकिन स्वयं केन्द्रित होने के कारण यह उसके लिए सम्भव नहीं है। रिश्तों का टूटना और बढ़ता अंधविश्वास मन की इसी वृति के कारण हैं। वह स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी भी चमत्कार को देखकर समर्पण कर देता है जिसके कारण वह दूसरों के शोषण का शिकार भी हो रहा है। कोई सूक्ष्म

शक्ति उसकी हानि न कर दे इसलिए वह जगह-2 आस्था के केन्द्र ढूंढ रहा है। हिन्दू समाज में यह बिखराव और अंधविश्वास सबसे अधिक है जिसके कारण धार्मिक साम्प्रदायिकता और धर्म परिवर्तन जैसी समस्याएं इसे चारों तरफ से घेर रही हैं।

हर रोज कोई नया देवी-देवता अस्तित्व में आ रहा है। आज के गुरू हिन्दू धर्म के इस बिखराव को और भी बढ़ाने में मदद कर रहे हैं। कभी गणेश की मूर्ति दूध पीने लग जाती है तो कभी हनुमान जी की मूर्ति की आंखों से आंसू आने लगते हैं और कभी पादूकाएं भगवान बनकर चलने लगती हैं। ईसाई व्यक्ति के लिए गणेश भगवान का और हमारे किसी देवता का कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन फिर भी उसका कोई कार्य नहीं बिगड़ता है और वह संसार पर राज कर रहा है। इतिहास गवाह है कि जिसने भी एक की पूजा की है उसी का विस्तार हुआ है चाहे वह ईसाई हो, मुसलमान या सिख हो। अनेक देवों के सिद्धांत ने हमेशा हिन्दू समाज में बिखराव पैदा किया है और विदेशी आक्रमणकारियों ने इस बिखराव को हथियार बनाकर इस देश के लोगों को गुलाम बनाया है। इसी बिखराव को देखकर आदि शंकराचार्य ने बहुदेव व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई थी और पंचायतन का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें उस समय के हिन्दू संरक्षकों से टक्कर लेनी पड़ी। उन्हें हिन्दू समाज का विरोधी कहा गया और अंत समय में उनकी मां की अर्थी को कंधा देने वाला एक भी व्यक्ति नहीं मिला तथा उन्होंने अपने घर में ही उनका अन्तिम संस्कार किया लेकिन आज उन्हें हिन्दू धर्म के उद्धारक के रूप में जाना जाता है और उनके द्वारा स्थापित मठों पर कुम्भ व महाकुम्भ के मेले लगाए जाते हैं।



एक ईश्वर की उपासना हमेशा ही व्यक्ति और समाज को आत्मिक बल देती है। बहुदेव व्यवस्था न केवल व्यक्ति को विभाजित करती है बल्कि इससे गरीब व्यक्ति का सबसे अधिक धार्मिक शोषण होता है। महात्मा बुद्ध ने इसी शोषण को रोकने का प्रयास किया था। उन्हें भी उस समय के समाज ने बहुत अपमानित किया था लेकिन जो व्यक्ति निस्वार्थ होकर चलता है उसका मार्ग संसार की कोई भी ताकत नहीं रोक सकती है। निस्वार्थ होने के साथ यदि ऐसा व्यक्ति परमात्मा की शक्ति का चुम्बक भी बन जाए तो उसकी जड़ें और भी गहरी हो जाती हैं तथा संसार का कोई भी तूफान ऐसे व्यक्ति की चाल को नहीं रोक सकता है। एक ईश्वर की उपासना और बहुदेववाद को समाप्त करने का यही बीड़ा कबीर, नानक, राजाराम मोहनराय और स्वामी दयानन्द ने उठाया था जिसे आगे चलकर राधास्वामी पंथ के आदि प्रवर्तक स्वामी जी महाराज ने बल प्रदान किया।

कोई भी व्यक्ति या समाज जितना अधिक मानसिक स्तर पर बिखरता है वह उतना ही अधिक कमजोर हो जाता है और जब मन कमजोर हो जाता है तो शरीर में कमजोरी स्वत: ही आ जाती है। ऐसा व्यक्ति और समाज धीरे-2 दम तोड़ने लगता है। शरीर को मजबूत करने के लिए कितने भी योग-अभ्यास किए जाएं, कितने भी प्राणायाम किए जाए कोई लाभ नहीं मिलता है। राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक चेतना की बिमारी कुछ और है तथा हम इलाज कहीं और ढूंढ रहे है बिमारी हमारे बिखराव के कारण है, बहुदेव व्यवस्था के कारण है और हम इलाज शरीर के अन्दर ढूंढ रहे है। बीमार आत्मा है और इलाज शरीर का कर रहे हैं। जीवन का एक और असंतुलन पैदा कर रहे हैं। शरीर का इलाज करना अच्छी बात है लेकिन आत्मा की बिमारी को समझना भी अति आवश्यक है।

आज विश्व में तनाव का मुख्य कारण आतंकवाद है जो धार्मिक असहिष्णुता का परिणाम है। विश्व के तीन मुख्य धर्मों; ईसाई धर्म, इस्लाम और यहूदी धर्म, में धामिक सहनशीलता की हमेशा ही कमी रही है जिसके कारण समय-2 पर संसार को अनेक धार्मिक युद्धों (क्रुसेडस) का सामना करना पड़ा है और आज भी मनुष्य के जीवन में इसके कारण उथल-पुथल मची हुई है। एक धर्म दूसरे धर्म को दबाने का प्रयत्न कर रहा है। धर्म परिवर्तन के लिए शैतानी हथकण्डे अपनाए जा रहे हैं। भारतीय दर्शन और भारतीय लोगों की सहनशीलता और सहिष्णुता हमेशा ही सराहनीय रही है। इस दर्शन ने विश्व को हमेशा ही शांतिपूर्ण सहवास का उपदेश दिया है। इसलिए यह धर्म विश्व के लिए बहुमूल्य विरासत है और इसे संजोकर रखना हमारा कर्त्तव्य है।

समस्या विश्व स्तर की हो, देश, धर्म या व्यक्ति के स्तर की हो ये सभी समस्याएं मानसिक अवसाद और तनाव के कारण हैं। विश्व के महान चीनी दार्शनिक और ताओ धर्म के प्रवर्तक लाओत्स सभी स्तर की समस्याओं के इलाज के लिए तीन सूत्र प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि मेरे पास तीन खजाने हैं, उनकी रक्षा करो (I have three treasures, guard them)। एक प्रेम, दूसरा कभी अति नहीं और तीसरा कभी प्रथम नहीं। अर्थात् एक-दूसरे के प्रति प्रेम भावना हो, कभी अति (एक्सट्रीम) की प्राप्ति के लिए प्रयत्न न किया जाए और कभी प्रथम आने का प्रयास न हो। हर कार्य में प्रथम आने की लालसा और उसमें भी कोई उसका मुकाबला न कर सके, कोई भी उसकी उपलब्धि के लिए चुनौती न बने, ये बातें मनुष्य की भूख को बढ़ाती हैं, उसके पागलपन को बढ़ाती हैं और उसे हर समय तनाव से भरकर रखती हैं।



महात्मा बुद्ध इसी बात को दूसरी तरह से कहते हैं। वे प्रेम के स्थान पर करूणा का प्रयोग करते है और सम्यक जीवन जीने पर जोर देते हैं जो मनुष्य की मानसिक चेतना को शांत रखता है। वे कहते हैं कि आप जो कुछ भी करें, होश और समभाव से करें। जो भी कार्य तनाव पैदा करे या तृष्णा को जन्म दे उसे न किया जाए या उसका उचित तरीके से प्रबंधन किया जाए ताकि वह अपना प्रभाव हमारे अन्दर न छोड़ सकें और संस्कार न बन सके। कार्य और कारण की श्रंखला का आरम्भ न हो सके।

मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परमसंत ताराचन्द जी महाराज कहते हैं कि मनुष्य के अन्दर का सारा तानव उसके संकुचित हृदय के कारण हो रहा है। वह इतना संकुचित और स्वयं केन्द्रित होता जा रहा है कि अपने स्वार्थ के सिवाय उसे कुछ नजर नहीं आता है। जब तक वह हृदय से विशाल नहीं होता है, वह कितना भी ध्यान करता रहे, कितना भी तटस्थ और साक्षी होने का अभ्यास करे, उसे शांति नहीं मिल सकती है। वे कहते थे कि विशाल नजरिया करने के लिए व्यक्ति को अपने घर से अभ्यास आरम्भ करना होगा। उनके तीन मुख्य सन्देश थे। माता-पिता सबसे बड़े देवी-देवता हैं, व्यक्ति अपनी मुट्ठी को नीचे की तरफ करके चले, भिखारी की तरह अंजला फैलाकर नहीं और परमात्मा कहीं बाहर नहीं मनुष्य के अन्दर है जिसका भेद केवल शब्द (नाद) भेदी सतगुरू ही दे सकता है। उनके ये सन्देश व्यक्ति को विशाल हृदय बनाते हैं, उसे धर्म के नाम पर जगह-2 बिखरने से बचाते हैं। परिवार व समाज के स्तर पर शांति प्रदान करते हैं तथा आत्मिक रहस्य का भेद खोलते हैं।

आज के सारे सभ्य समाज में लेना अधिक है इसलिए दुनियां में पागलपन बढ़ रहा है। मनोचिकित्सक और पागल असाईलम बढ़ रहे हैं। लेना व्यक्ति के हृदय को संकुचित बनाता है। देना उसे विशालता देता है, दूसरों के लिए जीना सिखाता है।

केवल लेने की प्रवृति व्यक्ति को पागलपन व घुटन की तरफ ले जाती है, उसे शंकालू बनाती है और असुरक्षा की भावना से जकड़ लेती है। उसे कमजोर, अस्थिर और स्वार्थी बनाती है। मौका पड़ने पर ऐसा व्यक्ति कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। किसी भी रिश्ते को निभाना उसके लिए कठिन है, केवल स्वार्थ का रिश्ता उसकी जरूरत होती है। इसके विपरित जो व्यक्ति अपनी मुट्ठी नीचे की तरफ करके चलता है अर्थात् देने और बांटने का जिसका स्वभाव है वह मानसिक तौर पर मजबूत रहता है, वह कभी पागल नहीं हो सकता है। वह दूसरों को साथ लेकर चलता है, दूसरों के दिलों पर सहज ही अधिकार कर लेता है इसलिए ऐसा व्यक्ति ही महान बनता है और हमेशा याद रखा जाता है। ऐसे व्यक्ति की एक आवाज पर क्रांति घट सकती है। हो सकता है वह हाथ और पैरों से कमजोर हो लेकिन दूसरे व्यक्ति उसकी ताकत बनकर दूर–2 तक उसकी ख्याति फैलाते हैं। संसार के व्यवहार में भी और परमात्मा के दरबार में भी ऐसे ही व्यक्ति कामयाब होते हैं।

देने से व्यक्ति की पदार्थ के प्रति आसक्ति कम होती है जिससे मानसिक तनाव स्वत: ही कम हो जाता है और निरासक्त व्यक्ति ही परमात्मा की भक्ति कर सकता है लेकिन विडम्बना यह है कि आज का सारा धर्म, गुरूओं और गौडफादर्स का पूरा जीवन लेने पर टिका हुआ है इसलिए ऐसा अध्यात्म कभी भी मानसिक तनाव से छुटकारा नहीं दिला सकता है बल्कि यह मानसिक तनाव पैदा करने का एक कारण अवश्य बनता है।

अत: आत्मसंतुष्टि का एकमात्र मंत्र देना है जो कभी भी मन में घुटन पैदा नहीं होने देता है और मानसिक तनाव की बहुत ही प्रभावकारी दवा है। देने का अर्थ है एक–दूसरे की मदद करना और अपने चारों तरफ के वातवरण



की रक्षा करना। वातावरण हर वक्त हमें कुछ न कुछ देता रहता है, इसके बिना हम एक पल भी जीवित नहीं रह सकते हैं। इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम जिस चीज की भी जीवन में फसल काटते हैं उसका बीज भी अवश्य बोते चलें ताकि वह फसल हमें आगे भी मिलती रहे। बीज बोए बगैर फसल नहीं मिलती है, यह कुदरत का नियम है। यह फसल चाहे विचार की है, धन की, प्रेम की, ज्ञान की या किसी भी स्थूल द्रव्य की है। इस नियम का पालन किए बिना हम जीवन में आगे बढ़ ही नहीं सकते है क्योंकि सारी प्रकृति इसी आधार पर आगे बढ़ रही है। संसार की जो भी सभ्यता आज तक पृथ्वी पर टिकी है वह देने के गुण के कारण ही टिकी है। अत: कितनी भी अति में जाओ, कितने भी सांसारिक हो जाओ, यदि देने की कला से वाकिफ हो तो कभी भी मानसिक तनाव परेशानी का सबब नहीं बनेगा और यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति प्रेम के मार्ग का अनुयायी हो और सबके अन्दर एक ही खुदा के दर्शन करता हो। यह मार्ग अति सरल है और कठिन भी है लेकिन इस मार्ग पर कोई भी व्यक्ति चल सकता है। इसमें न तो परिवार छोड़ने की जरूरत है और न ही संसार बल्कि इस मार्ग पर चलने वाले मनुष्य की असली परीक्षा संसार और परिवार में रहते हुए ही हो सकती है।

**राधास्वामी।**

# जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र



# पुस्तक सूची


1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य